निर्वाण के पथ पर

लेखक
श्री जयंति मुनिजी महाराज

हिंदी रूपातरकार
पं० रोशनलाल जैन



सम्पादक
सुरेन्द्र प्रसाद 'तरुण'

प्रकाशक :
पूर्वभारत स्था० जैन संघ
२७, पोलक स्ट्रीट,
कलकत्ता-१

प्रथम संस्करण : पाँच हजार
अप्रैल, १९६[illegible]

मूल्य : एक रुपया

रूप-सज्जाकार : श्री कलार्थी

मुद्रक :
ज्ञानपीठ प्रा० लि०, पटना-४

पुस्तक प्राप्ति-स्थान

१. अहिंसा निकेतन, बेलचम्पा आश्रम
   पो० रेहला (पलामू, बिहार)
२. मगध सांस्कृतिक संघ
   राजगृह (पटना, बिहार)
३. दुर्लभजी भाई शामजी विराणी
   ६, दीवानपुरा, पो० राजकोट (सौराष्ट्र)
४. नियामक, जैन विद्यालय



परमपूज्य तपस्वीजी श्री १००८ श्री जगजीवन मुनिजी महाराज स्वाभाविक मुद्रा में।

श्रद्धांजलियाँ ! सम्मतियाँ !! उद्गार !!!

पूज्य तपस्वी श्री जगजीवन मुनि महाराज ने जैन परम्परानुसार सलेखना व्रत के माध्यम से निर्वाण प्राप्त कर भारतीय संस्कृति का मूलाधार त्याग-भावना को पुन एकबार चमत्कृत किया है। मैं महान तपस्वी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता हू और विश्वास व्यक्त करता हू कि श्री 'तरुण' जी द्वारा सम्पादित 'निर्वाण के पथ पर' मुनि महाराज के जीवनादर्शों से लोगों को लाभान्वित करायेगा।

१६ ४-६८

नित्यानन्द कानूनगो
(बिहार के राज्यपाल)

धन्य आत्मबल !

रे, भव-बंधन था एक ओर, तप एक ओर
था युद्ध चल रहा अति कठोर, अतिशय कठोर
फूटा प्रकाश का पुंज प्रखर अध्यात्म-ज्ञान
व्रत-पर-व्रत निर्मल-शांत-चित्त—कैसा विधान
रे धन्य आत्मबल, छिन्न-भिन्न सब पाश-ताल
अवशेष सत्य, अवशेष सत्य का महाज्वाल !

(महाकवि) केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

अमरता का विजेता

मरण का कर वरण उसने अमरता ली जीत !
शोक भी शरमा गया लेकर उसीकी प्रीत !
हो उठा तप तरल उसकी प्राप्त कर मनुहार !
प्राण में वह भर गया आदर्श अतुल अपार !!

(कविवर) ब्रजकिशोर 'नारायण'

मुनिश्री के प्रति

ज्योति के उल्लास की ऊर्जा सजीव अनंत !
तिमिर-वन्या की तरंगों पर विभा छविमंत !
साधना कृतकृत्य, कंपित चलित, जड़ संसार !
देव, अर्हत, नमत शत, कारुण्य-पारावार !!

(प्रो०) सीताराम 'प्रभास'
हिंदी विभागाध्यक्ष, जैन कालेज, आरा (बिहार)

आशा है, इस भौतिक एवं स्वार्थरत संसार को मुनिजी के त्याग और तपस्यामय जीवन से एक नयी प्रेरणा तथा अक्षय चेतना मिलेगी। पुस्तक पठनीय है।

भिक्षु जगदीश काश्यप
निर्देशक, नवनालन्दा महाविहार, नालन्दा (बिहार)

जिस तप:पूत महात्मा का जीवन-चित्र इस पुस्तक मे अंकित है, वह वर्तमान के लिए एक प्रकाशस्तम्भ है। इस ग्रंथ के चरितनायक तपस्वी के द्वारा संथारा का स्वीकरण आत्मबल का एक ऐसा दृष्टांत है, जो आज के युग में अभूतपूर्व है। अवश्य ऐसे उच्चतम त्याग को प्रश्रय देनेवाले व्यक्ति विश्व मे विरले ही होंगे। ऐसे प्रकाशन से न केवल साहित्य की श्रीवृद्धि होती है, अपितु इससे समाज के साधारण व्यक्तियों का भी महान हित-साधन होता है।

सतीश चन्द्र मिश्र
न्यायाधीश, उच्च न्यायालय, पटना

महातपस्वी श्री जगजीवन मुनिजी महाराज जैसे तपोधनी का क्या कहने! जैसा उनका जीवन वैसी उनकी तपस्या, वैसा ही उनका व्यक्तित्व, उतना ही उदात्त उनका कृतित्व भी।

उनपर लिखी 'निर्वाण के पथ पर' पुस्तक हिन्दी साहित्य मे अपनी एक जगह लिये आयी है। 'तरुणजी' की यह सेवा अपने ढंग की अनूठी है।

(राजा) राधिकारमण प्रसाद सिंह

भगवान हमें मुनिजी से प्रेरणा दें। वे ही हमारी कार्य-शक्ति के स्रोत हों।

(फादर) मरफी
प्राचार्य, सेंट जेवियर्स, पटना

पूज्य तपस्वी श्री जगजीवनजी महाराज साहब ने बिहार की भूमि में निर्वाण प्राप्त कर बिहार की भूमि को गौरवान्वित किया है।

(डा०) लक्ष्मीनारायण सुधांशु
भूतपूर्व अध्यक्ष, बिहार विधान सभा

वर्त्तमान युग में बिहार को आध्यात्मिक गौरव प्रदान करनेवाले महान् संत श्री जगजीवन मुनि को मैं श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

तपस्वीजी के उपदेशों के प्रचार-प्रसार की बड़ी आवश्यकता है।

कृष्ण वल्लभ सहाय
भूतपूर्व मुख्यमंत्री, बिहार

'निर्वाण के पथ पर' एक सिद्ध तपस्वी पूज्य श्री जगजीवन मुनि के जीवन एवं उनकी तपश्चर्या पर प्रकाश डालता है।

श्री 'तरुण' जी की रचनाओं की उत्कृष्टता से मैं परिचित हूँ।..इस नवीन कृति के सम्पादन की बदौलत भी ये अपने जीवन के एक नये मोड़ की ओर बढ़ रहे हैं। मुझे भरोसा है, पाठक इस पुस्तक की महिमा से अवश्य लाभान्वित होंगे।

(डा०) राम सुभग सिंह
संसदीय कार्य मंत्री, भारत सरकार

सचमुच मुनि महाराज ने बिहार की भूमि पर संलेखना व्रत कर समस्त बिहार को गौरवान्वित तो किया ही है, साथ ही आध्यात्मिक इतिहास में एक नया अध्याय भी जोड़ा है। मैं महान् संत के प्रति श्रद्धानत हूँ। इनके सम्मान में किसी प्रकार के स्मारक बनाने की योजना बनायी जाएगी तो बिहार सरकार भी इस सत्कार्य में हर संभव सहयोग देना चाहेगी।

विन्ध्येश्वरी प्रसाद मण्डल
१०-३-६८ मुख्य मंत्री, बिहार

यह सही बात है कि पूज्य श्री तपस्वीजी ने बिहार की भूमि को धर्म-संगत संलेखना व्रत के माध्यम से गौरवान्वित किया।

देवशरण सिंह
सभापति, बिहार विधान परिषद्

श्री जगजीवन मुनि महाराज ने अपनी तपस्या से युग को त्याग का प्रत्यक्षीकरण कराया है। मैं महान् तपस्वी के जीवनादर्शों का प्रशंसक हूँ।

'निर्वाण के पथ पर' का प्रकाशन सर्वथा सराहनीय है।

धनिक लाल मंडल
अध्यक्ष, बिहार विधान सभा, पटना

पूज्य श्री जगजीवन मुनिजी महाराज साहब सच्चे और महान् तपस्वी थे। उन्होंने दुनिया को त्याग और तपस्या का रास्ता दिखलाया है।

हम भारतवासी इनसे सबक लेकर नैतिकता और त्याग का मार्ग अपनावें। 'निर्वाण के पथ पर' का स्वागत हो।

अब्दुल क्यूम असारी
भूतपूर्व चिकित्सा मंत्री, बिहार

पूज्य तपस्वी श्री जगजीवनजी महाराज का जीवन विविध कठोर व्रतों के पालन की माला हो गया था, और अंत में निश्चय के महामेरु पर आरूढ होकर कई दिनों तक लगातार आदेश और उपदेश देते हुए व परम ज्ञानज्योति में विलीन हुए।

वर्तमान यान्त्रिक-भौतिक युग में भी ऐसी घटना हो सकती है, यह एक अत्यन्त विचारणीय बात है।

ऐसे अपूर्व तपोधन के बारे में परिचय देने वाला ग्रंथ निकालने का उपक्रम स्तुत्य है।

श्रीधर वासुदेव सोहोनी (I C S)
मुख्य सचिव, बिहार सरकार, पटना

बंधुवर 'तरुणजी' द्वारा सम्पादित पुस्तक 'निर्वाण के पथ पर' को मैंने बड़े मनोयोग से पढ़ा। एक तप पूत साधक की जीवनी वह ध्रुवतारा है, जिससे शाश्वत प्रकाश में लोक-जीवन को मार्ग-दर्शन मिलता है। पूज्य तपस्वी श्री जगजीवन मुनिजी की जीवनी लिखकर श्री जयंति मुनिजी ने साहित्य एवं समाज की सच्ची सेवा की है।

आशा है, समाज में इस पुस्तक को यथेष्ट सम्मान मिलेगा।

कलक्टर सिंह केसरी
अध्यक्ष, विश्वविद्यालय सेवा आयोग, पटना

महान देहोत्सर्गी तपस्वी श्री जगजीवन मुनि के प्रति सादर अपनी श्रद्धांजलियाँ समर्पित करता हूँ।

(कविवर) रामदयाल पाण्डेय
अध्यक्ष, बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पटना

तपःपूत श्री जगजीवन मुनि महाराज ने संलेखना व्रत कर प्राचीन ऋषियों की परंपरा में एक नयी कड़ी जोड़ दी है। मुझे विश्वास है कि मुनि महाराज के निर्लिप्त एवं निर्विकार जीवनचरित्र से देश का जनजीवन अनुप्राणित होगा।

राम लखन सिंह यादव
भूतपूर्व लोकनिर्माण मंत्री, बिहार

पूज्य श्री जगजीवन मुनिजी महाराज साहब के जीवन में जैन धर्म का आदर्श जिस रूप में प्रतिबिम्बित हुआ है, वह अनुकरणीय है। उन्होंने इस युग में भी एक आदर्श को अपने जीवन में उतारने में सफलता पायी और अनेक लोगों को प्रेरणा दी। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक लोकप्रिय होगी।

(प्रो०) सिद्धेश्वर प्रसाद
उपमंत्री, सिंचाई एवं विद्युत मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली

जैन सिद्धांत के अनुसार जीवन की तपस्या का फल अंतकाल में समाधि-मरण करना बतलाया गया है, उसके लिए अपनी शक्ति के अनुसार यावत् जीवन प्रयत्न करना चाहिए। तपस्वी जगजीवन मुनि ने हम लोगों के सामने इस आदर्श को साक्षात् करके दिखलाया। 'निर्वाण के पथ पर' पुस्तक से उनके आदर्श जीवन की झांकी पा परम प्रसन्नता हुई।

(डा०) गुलाबचन्द्र चौधरी
प्राध्यापक, नवनालन्दा महाविहार, नालन्दा (बिहार)

समाधिकरण अपरिग्रह की चरम सीमा है। पूज्य श्री जगजीवन मुनि महाराज का त्याग एवं तपस्यामय जीवन भावी पीढ़ी का मार्ग-दर्शन करेगा।

(डा०) कुमार किशोर मंडल
प्राचार्य, रामलखन सिंह यादव कालेज, बख्तियारपुर, पटना

महान संत श्री जगजीवन मुनि की तपस्या ने, अपरिग्रह एवं त्याग का विरला उदाहरण बनकर, इस भौतिक युग को पुनः एक बार झकझोर दिया है।

'निर्वाण के पथ पर' के लेखक, अनुवादक, सम्पादक एवं प्रकाशक सभी प्रशंसा के पात्र हैं।

सुधांशु कुमार घोष
प्रेस ट्रस्ट आफ इंडिया, पटना

●●

सम्पादकीय

पूज्य तपस्वी श्री जगजीवन मुनिजी महाराज एक गौरवमय इतिहास के द्रष्टा थे जिनमें सत्य, अहिंसा, करुणा, मैत्री एवं त्याग का अनुपम समन्वय है। हमारे लिए वे प्राचीन साधना-परम्परा के नये साधक और तपस्या के अप्रतिम प्रतीक बन गये। इसीलिए हम मुनिजी महाराज को देश की अप्रतिम धार्मिक एवं आध्यात्मिक सम्पत्ति मानते हैं और इनके महनीय व्यक्तित्व को किसी सम्प्रदाय-विशेष में बाँधने की चेष्टा के सदा विरोधी रहे हैं। वैसे यह बात सर्वथा सत्य है कि स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय के श्रावकों तथा भक्तों को इनके सान्निध्य का सुअवसर पहले मिला तथा इनकी महिमा को निकट से देखने का समुचित लाभ भी उन्होंने उठाया। किन्तु, अब तो महाराजश्री संसार के अन्य युगपुरुषों की तरह ही सभी वर्गों के पूज्य हो चुके हैं।

तप पूत, साधना के धनी श्री जगजीवन मुनिजी महाराज निराकार पूजा के विश्वासी थे और वे सदा कहा करते थे—"सहयोग, महानुभूति और अपनत्व का भाव प्रत्येक प्राणी के साथ रखना ही सत्य की पहचान है और सच्चे मानी में भगवान की पूजा है।"

एक दिन हमारे एक प्रश्न के उत्तर में पूज्य तपस्वीजी ने कहा था—"तरुण भाइ, आज समस्त संसार सत्ता की भूख से ग्रसित है। सद्भावना की जगह तनाव का वातावरण है। लोग अणु-बमों का परीक्षण और सैन्य-शक्ति का संगठन कर अपने को बड़ा पराक्रमी साबित करने की होड़ लगाए हुए हैं, किन्तु, यह सत्य जानो, विश्वशान्ति और जनकल्याण के लिए पुनः सत्य, अहिंसा, करुणा तथा मैत्री को जीवन में उतारना ही होगा। और, मैं आश्वस्त हूँ कि अब वह वातावरण बनने ही वाला है।"

पूज्य तपस्वीजी ने लोकभाषा के माध्यम से जन-जीवन में आध्यात्मिक चेतना फैलाने का व्रत लिया था और इस कार्य में उन्हें भरपूर सफलता भी मिली थी। सौराष्ट्र (गुजरात) को छोड़कर महाराजश्री ने बिहार, बंगाल तथा उड़ीसा में लगभग बीस हजार मील की पद-यात्रा कर, अपने पुरुषार्थ स लोक-जीवन को उद्भासित किया था। यह सुविदित सचाई है कि महाराजश्री बिहार को अपने पूर्वजों को भूमि मानकर उसकी प्रशंसा करते अघाते नहीं थे तथा बार-बार इसकी वंदना करते थे। यही कारण है कि बिहार महाराजश्री के महिमामय जीवन का ऐतिहासिक साक्षी बन गया है। शिखरजी (पारसनाथ पर्वत, हजारीबाग) से आध्यात्मिक प्रेरणा, धनबाद में अंतिम चतुर्मास तथा राजगृह में निर्वाण इस तथ्य के ज्वलंत उदाहरण हैं।

अनवरत साधना से तपस्वीजी युग-पुरुष बने और 'संथारा'- अनुष्ठान ने इन्हें युगदेवता की संज्ञा से विभूषित किया। यही कारण है कि 'संलेखना'-अनुष्ठान की अवधि में देश-विदेश के अनेक संतों, श्रीमंतों, राजनेताओं एवं सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यकर्त्ताओं ने राजगृह में आकर महाराजश्री के दर्शनों का लाभ लिया। हमें याद है, उपवास के ४१वें दिन आचार्य विनोबा भावे ने हमारे दाएँ कंधे पर हाथ रखते हुए कहा था—"भाई, अपने से बड़े और पूजनीय मनीषियों के दर्शन बिना कुछ खाये ही करना धर्म-संगत बताया गया है। अस्तु, अभी ही 'संलेखना-कुटीर' चलकर महाराजश्री के दर्शन कर लिये जाएँ।"

सर्वोदय नेता श्री जयप्रकाश नारायण ने भी इसी प्रकार की भक्ति दिखलायी थी। उपवास के ४२वें दिन जब हम श्री जयंतिलाल एम० कोठारी के साथ जयप्रकाश बाबू से मिले और उन्हे बताया कि वैसे तो तपस्वीजी का तेज सर्वथा विद्यमान है किन्तु शरीर बड़ा दुर्बल होता जा रहा है, तो इसपर जयप्रकाश बाबू ने कहा—"चलिए, मैं अभी पूज्य तपस्वीजी के दर्शन का लाभ ले लूँ अन्यथा कहीं वे···! तो, फिर कसक मिटाए नहीं मिटेगी।"

यद्यपि जयप्रकाशजी को तुरंत पटना लौटना था और उनकी पत्नी श्रीमती प्रभावती देवी बार-बार कह रही थी कि शीघ्र पटना चला जाए, क्योंकि कल तो फिर राजगिर आना ही है और तभी महाराजश्री के

दर्शन किये जाएँगे, किन्तु जयप्रकाशजी नहीं माने और 'सलेखना-कुटीर' की ओर चल ही पड़े।

महाराजश्री ने लोकभाषा के माध्यम से लोकजीवन में आध्यात्मिक चेतना भरने का संकल्प सार्थक किया था और इस संदर्भ में इन्होंने २१ हजार दोहा-साहित्य की रचना भी की थी। आज आवश्यकता इस बात की है कि महाराजश्री के उपदेशों से अधिकाधिक लोगों को लाभान्वित करने के क्रम में इनके उपदेशों को विभिन्न भाषाओं में अनूदित कराके इनका प्रचार-प्रसार कराया जाए, जिससे कि महाराजश्री की भावनाओं से जन-जन को परिचय मिले, प्रेरणा मिले तथा आध्यात्मिक चेतना भी। परम संतोष का विषय है कि पूर्वभारत स्थानकवासी जैन संघ, कलकत्ता ने इस सम्बन्ध में सराहनीय तथा व्यावहारिक संकल्प लिया है, जिसका प्रथम प्रतिफल यह पुस्तिका है। इस सत्कार्य के लिए हम श्रीसंघ व सम्मानित सदस्यों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं, क्योंकि सत्साहित्य का प्रचार स्वयं एक सराहनीय व्यापार है।

प्रस्तुत पुस्तक 'निर्वाण के पथ पर' के लेखक श्री जयन्ति मुनि महाराजजी पूज्य तपस्वीजी के समादरणीय पुत्र एवं स्थानकवासी जैन-परम्परा के विद्वान सन्त हैं। इन्होंने महाराजश्री के साथ रहकर गृहस्थ जीवन से तपस्वी-जीवन तक एक अनन्य सहयोगी का भी काम किया है। इनसे अधिक अधिकारी व्यक्ति दूसरा और कौन हो सकता है? पं० रोशनलालजी जैन ने इसे मूल गुजराती से राष्ट्रभाषा में अनूदित किया है। पं० रोशनलालजी जैन केवल गुजराती एवं हिन्दी के विद्वान ही नहीं, बल्कि स्थानकवासी जैन सन्तों के सम्मानित शास्त्राचार्य भी हैं और जैन विद्यालय, बगसरा (सौराष्ट्र) में रहकर साधु-साध्वियों को अनेक वर्षों से शास्त्रीय ज्ञान कराते आ रहे हैं। हम इस महान कार्य के लिए १००८ श्री जयन्ति मुनि महाराज के विशेष कृतज्ञ हैं तथा पंडितजी के प्रति भी अत्यन्त आभारी हैं। हमारे लिए [illegible] साहित्यकार का [illegible] का जो [illegible] गया, उस [illegible]

स्थान भी यही है। अतएव हम यहाँ की हर घटना को अपनी घटना मानते है। इसी संदर्भ में इस महान् तपस्वी की तपस्या से अखिल विश्व को परिचित कराना हम अपना सहज धर्म मानते हैं। वैसे हम स्वयं स्वतंत्र रूप में इस पुस्तक के लिखने का विचार रखते थे, किन्तु संयोगवश महामहिम १००८ श्री जयंति मुनि महाराज ने गुजराती भाषा में इसे लिपिबद्ध किया तथा विद्वानप्रवर महाराजश्री के वरेण्य प्रियपात्र पं० रोशनलालजी जैन ने इसे हिंदी में अनूदित करने का सौभाग्य लेकर हमें इस सौभाग्य से वंचित कर दिया।

इस अवसर पर हम अपने अभिन्न मित्र श्री सुमतिलाल जैन (नन्हू भाई) एवं भाई श्री नेम कुमार जैन के प्रति कृतज्ञताज्ञापन करते हैं, जिनकी प्रेरणा, सद्भावना एवं सहयोग से ही हम जैन-समाज के निकट-सम्पर्क में आ सके है। सचमुच, नन्हू भाई के स्वर्गीय पिता स्वनामधन्य श्री कन्हैयालालजी श्री श्रीमाल (भूतपूर्व मैनेजर, जैन श्वेताम्बर कोठी) ने यहाँ एक ऐसी विशिष्ट परम्परा स्थापित की थी कि जैन तथा अजैन का कोई भेद-भाव कभी प्रतीत ही नही होता था। फलस्वरूप हम सब एक-दूसरे के सुख-दुख में एक समान सहयोगी सिद्ध हुए है और यही कारण है कि इस महान् यज्ञ की सफलता में भी प्रत्येक वर्ग के लोगो ने निष्ठापूर्वक अपना सहयोग दिया है। हम तो महाराजश्री के पावन चरणो के स्पर्श का लाभ लेकर अपने-आपको धन्य मानते है।

महाराजश्री के आचार-विचार और सौहार्द का प्रभाव इनके श्रद्धालु भक्तो पर कैसा है, इसका परिचय हमें उसी समय मिल गया था, जब पिछले वर्ष (१९६६-६७) सारा विहार अभूतपूर्व अकाल के कराल गाल में पड़ा हुआ था। हमने देखा कि राजगृह क्षेत्र की जनता की सेवा में वे कैसी मुस्तैदी और ईमानदारी से तत्परता दिखला रहे है। श्रद्धेय श्री चन्दुलाल एम० कोठारी, श्री मनु भाई बी० मेहता तथा श्रीमती ज्योति बहन की सेवाएँ उस समय भी अतुलनीय रही और इस महातप की सफलता में तो उनका सहयोग सर्वथा अवर्णनीय है।

इस अवसर पर श्री शंकर भाई, श्री रतिभाई, श्री प्रभुदास भाई, श्री प्रफुल्ल भाई, श्री वनमाली दास भाई तथा संघ-प्रमुख श्री केशव भाई आदि

मित्रों की चर्चा सर्वथा उल्लेखनीय है, जिनके सहयोग के विना यह सफलता सम्भव ही नहीं थी।

पुस्तक प्रकाशन में कितनी सफलता मिली, यह तो पाठक ही वताएँगे, किन्तु सुरुचिपूर्ण प्रकाशन की दिशा में उचित निर्देश देने के लिए हम हिंदी-जगत् के सुप्रसिद्ध कवि, लेखक एव पत्रकार श्री ब्रजकिशोर 'नारायण' जी के प्रति अपनी विशेष कृतज्ञता प्रकट करते हैं। इसी सदर्भ में श्री महेशनारायण 'भारतीभक्त' तथा श्री जयतिलालजी जैन के प्रति भी हम विशेष कृतज्ञ हैं। साथ ही ज्ञानपीठ प्रा॰ लि॰ (पटना) के मुद्रण-कुशल प्रबधकों तथा इस पुस्तक के रूप-सज्जाकर श्री 'कलार्थी' जी के प्रति भी अपना आभार प्रकट करते हैं, जिनकी तत्परता से हमें वहुत वडा सहारा मिला। श्री निरजन देव जैनजी भी हमारी बधाई के पात्र हैं, जिनकी उपस्थिति हमें सुलभ नहीं रहती तो गुजराती अशों एव जैन-पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग में हमें वडी कठिनाई होती।

इस पुस्तक में हम कुछ और चित्र देने के पक्ष में थे, परन्तु उपयोगी चित्र हमें मिल नहीं सके। फिर भी जो चित्र मिले, उनके लिए नेशनल फोटो स्टूडियो, झरिया (धनवाद) तथा सुधीर कुमार जैन (जैन कन्स्टकशन, खास महाल, टाटानगर) हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

अत में, वस इतना ही कहना है कि इन खूबियों के मूल में तपस्वीजी की महिमा है और खामियों के पूरे जिम्मेदार हम हैं। अतएव क्षमा-याचना को हम अपना कर्त्तव्य मानते हैं।

अप्रैल, १९६८ — सुरेन्द्र प्रसाद 'तरुण'

मगध सांस्कृतिक सघ राजगृह, पटना (विहार)

विषय-सूची

जिनके आशीर्वाद से पूज्य तपस्वीजी महातपस्वी
बने, उन्हीं सौराष्ट्र-केशरी स्वर्गस्थ गुरुदेव
प्रात स्मरणीय १००८ श्री प्राणलालजी
महाराजश्री के चरण-कमलों मे
सादर।

प्राण-पद-रज
मुनि जयत

प्राक्कथन

पूज्य तपस्वी श्री जगजीवनजी महाराज साहब का यह संक्षिप्ततम जीवन-परिचय है। यों तो उनका सारा जीवन ही पग-पग पर विशिष्ट एवं विविध घटनाओं से भरा-पूरा है और उनके जीवन के सभी क्षेत्रों से ही अनुभूतियों का वास्तविक इतिहास जानने-समझने को मिल सकता है, परन्तु इस लघु पुस्तिका में यह सब कथमपि शक्य न था। भूलकर भी यदि सभी विशिष्ट घटनाओं को इसमें स्थान देने का प्रयत्न किया गया होता तो पुस्तक का पूर्वनिर्धारित कलेवर बहुत बढ़ जाता और मूलभूत लक्ष्य का निर्वाह भी नहीं हो पाता। अतः इस पुस्तिका-लेखन का मूल ध्येय संलेखना महातप के उल्लेख को कुछ विशिष्ट स्थान देते हुए राजगृह में निर्मित इतिहास की कतिपय स्पष्ट झाकियाँ प्रस्तुत करने तक ही सीमित रखा गया है।

समय आने पर पूज्य तपोधनी की व्यापक प्रभुता को प्रकाशित करने का भी मानसिक संकल्प है अवश्य, परन्तु उसके लिए समीचीन काल-मर्यादा एवं अनुकूल योग्य साधन अपेक्षित हैं, जिन्हें जुटाने का यथा-सम्भव शीघ्र प्रयास किया जाएगा। जीवन के छोटे-बड़े सभी क्षेत्रों में पूज्य तपस्वीजी का अबाधित प्रवेश होने की वजह से उनका सारा जीवन ही प्रेरणाप्रद है अतः उसका सत्वर प्रकाशन अनिवार्य है।

किंतु, इस परम सत्य को स्वीकारते हुए भी सम्प्रति उसे यथार्थ एवं अपेक्षित स्वरूप देने में हम लाचार हैं और इसीलिए क्षंतव्य भी।

यह सारी पुस्तिका १० प्रकरणों में विभाजित है। विविध रंगों से परिपूर्ण गृहस्थाश्रम एवं बाल्यकाल का वर्णन प्रथम प्रकरण में ही समाप्त कर दिया गया है, जब कि यह सारा वर्णन अपने-आपमें एक अलग विशाल ग्रन्थ की अपेक्षा रखता है।

दीक्षा के बाद के ३० वर्षों का इतिहास एक ही प्रकरण में प्रस्तुत कर देने का संक्षिप्ततम प्रयास भी पाठकों को खटकेगा; क्योंकि इन तीस वर्षों में लाखों लोगों पर इस महापुरुष ने अपने अप्रतिम प्रभाव का जादू फैलाया था। परन्तु, हमारे पास इसके लिए भी दूसरा कोई चारा न था।

अंतिम बीस वर्षों में तपोधनी ने काशी से कलकत्ता तक के व्यापक विहार-क्षेत्र में उड़ीसा और विहार राज्यों को एक साथ रखकर एक नये युग का नया इतिहास निर्मित किया था, अतः 'पूर्वभारत में धर्म-प्रकाश' शीर्षक प्रकरण देकर उसकी जानकारी कराने का प्रयास किया गया है। स्थान के औचित्य का निर्वाह इसमें भी नहीं हुआ है, परन्तु इससे अधिक यहाँ शक्य न था।

धनबाद के अन्तिम चतुर्मास की सफल पूर्णाहुति के पश्चात् राजगृह की ओर विहार करना तथा वहाँ सदियों से सोये हुए इतिहास के द्वार को खटखटाकर उसको नया मोड़ देने का वृत्तान्त सचमुच ही महत्त्वपूर्ण और अद्भुत है। इससे इतिहास को नये पृष्ठ प्राप्त हुए हैं। दो सहस्र वर्षों के बाद पहले-पहल इसी पवित्र क्षेत्र में अनेक संत-सतियों से आराधित संलेखना महातप का जीता-जागता दृष्टान्त अपने जीवनकाल में ही तादृश चरितार्थ करके दिखा देना सद्भाग्यशील विरले महापुरुष

द्वारा ही संभव है। अत राजगृह के इतिहास मे इसकी महिमा अपार है। शास्त्रो के ऐतिहासिक एव शाब्दिक वर्णनो को अपने जीवन के साथ समाविष्ट कर देना भी तो एक नया इतिहास ही है। अत सचमुच ही उनका सारा जीवन इस धन्य एव विरल प्रसग से परम ऐतिहासिक बन गया है।

जैसा कि जैन-इतिहास कहता है, चन्द्रगुप्त मौर्य्य के बाद सलेखना जैसे महातप की कोई घटना यहाँ नहीं घट पायी थी। जैनो की पितृभूमि सदृश यह पवित्र धाम प्राचीन संस्कृति की आध्यात्मिक साधना से जब सर्वथा शून्य बन गया, तब सौराष्ट्र के गिर प्रदेश मे जन्मे हुए इस आध्यात्म-केशरी ने राजगिर के गिर प्रदेश मे प्राचीन सस्कृति के इतिहास का कायाकल्प करके कलियुग मे भी सतयुग के दर्शन कराये।

सलेखना का स्वरूप

'संलेखना' अथवा 'सथारा'—ये पर्यायवाची शब्द हैं। जैन शास्त्र के अनुसार ज्ञानपूर्वक कषाय (क्रोध, मान, माया व लोभ) एव शरीर को क्रमश कृश करके समभावपूर्वक हिंसा, असत्यादि १८ पाप स्थानक और ४ प्रकार के आहार (अशन, पान, खादिम, स्वादिम) का तथा सबसे अधिक प्रिय अपने शरीर का भी परित्याग (व्युत्सर्ग) करना एव जीवन-मरण की आशसा से सर्वथा रहित हो जाना—यही 'सलेखना' है।

'सथारा' शब्द 'सस्तारक' शब्द से निष्पन्न हुआ है। अन्तिम शय्या अर्थात्—जिसके पीछे दूसरी शय्या कभी करने की अपेक्षा नहीं रहती है, जिसे मृत्यु-शय्या भी कहा जा सकता है, जो घास-पुआल से बनी होती है, जिसपर बैठकर समभावपूर्वक निश्चल योद्धा की तरह वृत्तियो एव प्रकृतियों को समेट कर मृत्यु के साथ लड़ना होता है, जो शम-दम-

यम-नियम की पोषिका है और जो आत्म-साधना के क्रम में अत्यन्त उपकारी है। अपश्चिम अर्थात्—जिसके बाद कुछ भी करना शेष नहीं रहता, ऐसे मारणांतिक संलेखना-व्रत के अनुष्ठाता के साथ निर्दोष शय्या का सतत सम्बन्ध रहने से ही संलेखना जैसे आत्म-स्पर्शी व्रत को भी संथारा जैसा गुणनिष्पन्न, सार्थक पर्यायवाची नाम दिया गया है।

संलेखना महातप : महिमा एवं आराधना

तीर्थंकर प्रभु के समय से चली आती जैन संस्कृति की यह सनातन ऋषि-परंपरा है। इस परम्परा का यथार्थ अनुसरण करनेवाला मुनि वीतराग आज्ञा का आराधक गिना जाता है। चरित्र-धर्म की उत्कट आराधना और आगमों के श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन के बाद जब देह एवं आत्म-विषयक भेदज्ञान अपने वास्तविक स्वरूप में आ खड़ा होता है तब आत्मा के सच्चिदानन्द-स्वरूप की विशुद्ध प्रतीति होती है। आत्मा की अजर अमरता तथा विराटता जब साकारता को पाती है, तब काया की माया दूर हो जाती है। शरीर तब क्षणभंगुर, सड़न, गलन और विध्वंसन स्वभाववाला दृष्टिगोचर होने लगता है। दर्शनशास्त्र की भाषा में जब एक-दूसरे में एक-दूसरे का अत्यन्ताभाव अन्तरात्मा में अवस्थित हो जाता है तब बहिरात्म-दृष्टि बदल जाती है और अन्तरात्मा-रूपी नयी दृष्टि खुलती है। 'संथारा' के मूल में भी यही आत्मदृष्टि है।

संलेखना का अर्थ आत्महत्या नहीं

आत्महत्या सदा क्रोध, मान आदि कषायों के क्षणिक आवेश का दुष्परिणाम है। कषायों के आवेश में ज्ञानपूर्वक विचारने की शक्ति के ऊपर एक तरह का पर्दा पड़ जाता है। सद्ज्ञान को भूलकर कर्तव्या-

कर्तव्य के विवेक से वह भ्रष्ट हो जाता है। अतः सभी शास्त्रों में आत्म-हत्या पापमूलक मानी गयी है। सलेखना का स्वीकरण ठीक इसके विपरीत है। यहाँ कषायों के आवेश शम-दम के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। समभाव ही सलेखना महातप का मुख्य केन्द्र-विन्दु है। विषमता को यहाँ अवकाश ही नहीं है। अन्तरात्मा के विशुद्ध स्फुरण में इसका जन्म होता है अथवा जब शरीर किसी तरह धर्म-क्रिया या जन-सेवा के योग्य नहीं रहता है, तब मृत्यु का समय नजदीक जानकर ज्ञानी पुरुष अपने इस जीर्ण शरीर को जीर्ण वस्त्र की तरह 'वोसरा' (परित्याग) देते हैं। इस महातप में कितने ही उपसर्ग अथवा परिषह क्यों न आएँ, परतु उन सभी विषमताओं में भी ज्ञानपूर्वक समता, शांति एव समाधि बनाये रखने की एकान्त शास्त्राज्ञा है। इतना ही नहीं, लोकैषणा की दृष्टि से ज्यादा जीने की भी इच्छा न रखना तथा क्षुधा-पिपासा के सतापकारी परिषह से ऊबकर जल्दी मर जाने की भावना भी न आने देना—बल्कि समभाव-पूर्वक जब तक आयुष्य का परिवल है तब तक आत्मध्यान-ईश्वरोपासना में समययापन करना ही सलेखना-रूपी अन्तिम साधना अथवा परम समाधि का मूल है। अतः इसे आत्महत्या कथमपि नहीं कहा जा सकता है।

वस्तुतः चैतन्य एव देह-विषयक विवेक-रूपी भेद-ज्ञान का जो अब तक का अनवरत अभ्यास था, उसका समभावपूर्वक आत्मपरीक्षण ही सलेखना है। इसी कारण जो सफलता इसमें मिलती है, वह तो जीवन की वैभवमयी कृत-कृत्यता ही है।

सथारे का नाम लेने मात्र से ही सामान्यतया कायर पुरुष प्रकम्पित हो उठते हैं। मृत्यु को निमत्रण देने का साहस उनके मन को अशक्य-सी वस्तु लगती है, कदाचित् किसी को शक्य भी लगे तो अवश्य ही उनके मन में यही कल्पना बलवती रहती है कि नीरोग एव सशक्त शरीर का

यह विषय नहीं। किन्तु, हमारे चरित्रनायक ने अंतरात्मा की प्रेरणा से उन सबकी आशंकाओं का समूल अपहरण करते हुए सशक्त एवं नीरोग देह से ही महातप का अनुष्ठान कर इतिहास का एक नया एवं आश्चर्य-कारी पृष्ठ खोल दिया—यह तथ्य इस पुस्तिका के आद्यंत वाचन से पाठकों को स्वतः ही ज्ञात हो जाएगा।

संसार के प्रायः सभी जीव जहाँ अज्ञाननावश प्रति क्षण मृत्यु-मुख की ओर अग्रसर हो रहे हैं, वहाँ तपस्वीजी जैसे महापुरुष स्वयं मृत्यु के सम्मुख जा खड़े हुए और स्वेच्छया बहादुरी के साथ उसका मुकाबला करने के लिए मोरचा बनाकर डटे रहे। जो मृत्यु अधिकांश जनसमुदाय को अपनी क्रूर दाढों में दबोचकर निर्ममतापूर्वक मार डालती है, वही मृत्यु ऐसे मृत्युञ्जयी महापुरुषों के समक्ष पराजय स्वीकार कर भय से सिहरती रहती है तथा उनके चरणों में लोट-लोटकर गिड़गिड़ाती है।

पूज्य तपोधनीजी ने यमराज के सामने निर्भयतापूर्वक मोरचाबंदी कर कर्मरूप शत्रुओं के साथ समर करने के लिए जो आगे कदम बढ़ाया, वह साधना के इतिहासाकाश में 'यावच्चन्द्र दिवाकरौ' चिरकाल तक चमकता रहेगा।

धन्य हैं ऐसे मृत्युञ्जयी महापुरुष! धन्य है उनकी सहिष्णुतापूर्ण परम साधना! धन्य है राजगृह में इस तरह के नवयुग के नवइतिहासनिर्माण का महाकार्य! धन्य है यह महातप! धन्य है परम ज्ञान-चेतना! और, धन्य है पवित्र दिवंगत आत्मा, कि जिनके चरणकमलों में हमारे त्रिकाल कोटिशः वंदन हैं!

विनयावनत
रोशनलाल जैन
नियामक, जैन विद्यालय,
वडिया (सौराष्ट्र)

१
पूज्य तपस्वीजी का पूर्वपरिचय : गृहस्थाश्रम

पूज्य तपस्वी श्री १००८ श्री जगजीवनजी महाराज ने भागवती जैन दीक्षा जब अङ्गीकार की, उससे पूर्व का विविध विशिष्टताओं से परिपूर्ण उनका गृहस्थाश्रम-जीवन-कवन भी जानने योग्य है।

पश्चिम भारत में अनेक बन्दरगाहों एवं विलक्षण विशेषताओं से भरेपूरे सौराष्ट्र प्रान्त के अमरेली जिले में धारी तहसील पड़ती है। गिरिमाला के बीच दलखाणिया नामक एक गिरगाँव उसी प्रसिद्ध तहसील में है। शत्रुञ्जय जैसी पवित्र नदी के शीतल जल से दल-खाणिया गाँव की भूमि सदा आप्लावित होती रहती है। गिर-प्रदेश को केशरी सिंहों की मूल जन्मभूमि (माभोम) के रूप में विश्व-भर में ख्याति प्राप्त है।

हमारे चरित्रनायक अध्यात्म-केशरी का जन्म भी इसी दलखाणिया गाँव में हुआ था। उनके पूज्य पिताश्री का शुभ नाम श्री मोनजी भाई था तो पूज्यनीया मातुश्री का शुभ नाम श्री झकल बाई। तपस्वीजी बहुत बाल्यवय में ही माता-पिता के वात्सल्य-सुख से वंचित हो गये थे। अपने चाचा श्री पीतांबर भाई की छत्र-छाया में किशोरावस्था व्यतीत की।

वि० स० १९५६ के महादुष्काल में पैसा, जमीन और पशुधन से समृद्ध चाचा की स्थिति सहसा एकदम पलट गयी।

थोड़ी समझ और उम्र के बढ़ते ही श्री जगजीवन भाई ने अपना स्वतंत्र जीवन प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम अपने श्रम की कीमती कमाई ढाई रुपये जब उन्हें मिले तो वे दुविधा में पड़ गये कि इससे पहले पादत्राण (जूता) लूँ या पगड़ी ? कारण यह कि उन्हें दोनों ही वस्तुओं की समान आवश्यकता थी। ऐसी दयनीय स्थिति होने पर भी अपने बुद्धि-बल एवं साहस के सहारे वे आगे बढ़े।

और, कुछ ही वर्षों में वे नगरसेठ गिने जाने लगे। प्रतिष्ठित व्यक्ति के रूप में उनकी ख्याति बढ़ती गयी। जनहित के सारे कार्य वे निःस्वार्थ भावना से करते रहे। अपने व्यवहारकौशल्य एवं निष्ठावान प्रामाणिक जीवन के चलते वे ग्राम के सर्वप्रिय मुखिया (सरपंच) चुन लिये गये। उस समय दलखाणिया ग्राम प्रगतिशील गिने जानेवाले बड़ौदा राज्य (स्टेट) के अन्तर्गत था।

दया एवं सेवा ही उनके जीवन के मुख्य पहलू थे। पुरखों द्वारा अर्जित तीन सौ बीघा जमीन का योग्य कृषि-कर्म द्वारा उन्होंने विकास किया। स्वर्गीय पूज्य महात्मा गांधीजी के अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलन के पूर्व ही दलखाणिया ग्राम में पूज्य तपस्वीजी ने अस्पृश्यता-निवारण की नींव डाली थी और अपनी १०० एकड़ जमीन हरिजनों को खेती करने के लिए दे दी। हरिजनों के विकास के हर कार्य में व्यक्तिगत रस लेना उनके जीवन का प्रधान लक्ष्य था।

एक ओर धंधा-रोजगार और दूकानदारी बढ़ती जा रही थी तो दूसरी ओर गृहस्थाश्रम की जिम्मेदारियाँ भी वर्धमान थीं। सद्भाग्यवश पूज्य तपस्वीजी की धर्मपत्नी श्रीमती अमृतबाई अपने सुखी गृहस्थाश्रम को

आदर्श गृहस्थाश्रम बनाने मे अपना सर्वस्व योगदान कर रहीं थीं। आबाल-वृद्ध सबके हृदय में पूज्य तपस्वीजी का स्थान ग्राम-पिता के रूप में अंकित हो गया था। मातृकल्पा श्रीमती अमृतबाई भी स्वभाव से ही दयालु थीं। उन्हे हर तरह के दान-पुण्य करने की पूज्य तपस्वीजी की ओर से पूरी छूट थी।

अपने पारिवारिक जीवन मे उनके दो पुत्र और चार पुत्रियाँ हुई। ज्येष्ठ पुत्र श्री अमृतलाल भाई तो बचुभाई के प्रिय नाम से प्रसिद्ध है। छोटे पुत्र श्री जयतिलालजी जैन-मुनि दीक्षा (भागवती दीक्षा) से दीक्षित है। पुत्रियों में ज्येष्ठ पुत्री प्रेमकुँवर बहिन और चम्पा बहिन का शुभ विवाह पूज्य तपस्वीजी ने अपनी गार्हस्थावस्था मे ही अपने हाथों से कर दिया था। आज ये दोनो बहिने गोंडल मे गौरवपूर्ण ढग से सुखी गृहस्थ-जीवन बिता रही है। तीसरी एव चौथी पुत्रियो—प्रभाबाई एव विजयाबाई—ने कौमार्यावस्था मे ही जैन भागवती दीक्षा स्वीकार कर ली, जो आज जैन साध्वी के रूप में सुदूर प्रांतो मे धर्म-प्रचार कर रही है। पूज्य तपस्वीजी ने अपनी सतानो के अतःकरण मे बाल्यकाल से ही जो उत्तम धार्मिक सस्कारो के बीजारोपण किये थे, उसी का यह साक्षात् परिणाम है।

पूज्य तपस्वीजी की गृहस्थाश्रम-सम्बन्धी बहुत-सी विशेषताएँ एव नीति-रीतियाँ जानने और समझने योग्य है। आदर्श गृहस्थाश्रम के लिए उनका जीवन प्रेरणाप्रद भी है। रात्रि के दस बजे जब वे अपनी दूकान बद करते थे तब तुरत हाथ मे लालटेन एव दवाइयाँ लेकर ग्राम के दुखी, पीडित और बीमार व्यक्तियो के घर जाते, उनकी कठिनाइयाँ सुनते तथा यथाशक्य दूर करते। बीमारो को दवा पिलाने और उनके घर आवश्यकतानुसार खाने-पीने की सामग्री भी अपनी दुकान से

भेज देते। ज्वरग्रस्त व्यक्ति को यदि राव अथवा कांजी जैसे पेय पदार्थों की आवश्यकता होती तो श्रीमती अमृतवाई स्वयं अपने हाथ से तैयार करके यथासमय उसके घर पहुँचा देती थीं।

अपने ग्राम में या आसपास कहीं कोई पागल आदमी यदि उन्हें दीख पड़ता तो उसे घर लाकर खिलाना-पिलाना और यथोचित सेवा कर यथासाध्य सुख पहुंचाना पूज्य तपस्वीजी का सवसे वड़ा शौक एवं सर्वोत्तम कार्य था। घायल, वीमार या लूले-लंगड़े पशु-पक्षियों और मनुष्यों की यथोचित सेवा करना तथा जव तक कोई पूर्ण स्वस्थ न हो जाए तव तक उसको आहार-विश्राम की सुविधा प्रदान करते रहना उन्हें अपना कर्त्तव्य लगता था।

गाँव के पारस्परिक झगड़ों को दूर करना, यथोचित न्याय करना, अन्याय के शिकार वने हुए व्यक्तियों का पक्ष लेकर उन्हें उचित न्याय दिलाना आदि उनके लिए परम रुचिकर विषय थे। कोई पुरुष अपनी स्त्री को मारता-पीटता अथवा अनुचित त्रास देता तो पिता-स्वरूप पूज्य तपस्वीजी की शरण में आ जाने पर वह वहिन भययुक्त बन जाती थी। उनके रहते कोई राजकीय अधिकारी गाँव के किसी व्यक्ति पर न हाथ उठा सकता था और न किसी कार्य के लिए रिश्वत ही मांग सकता था। अपने गाँव, आसपास के क्षेत्रों एवं अधिकारियों में पूज्य तपस्वीजी की ऐसी थी व्यापक प्रभुता। छोटे-वड़े सवके साथ निःस्वार्थ प्रेमपूर्ण सम्वन्ध ही उनके लिए दिव्यता की कुञ्जी थी।

दूकान के कार्य एवं व्यापार में भी उनकी प्रमाण निष्ठा का उतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान था। छोटे-वड़े सबको वहाँ एक ही भाव से वस्तु मिल सकती थी। छोटे वालक के भी ठगे जाने का भय न था। जरा भी अविश्वास या गड़वड़ी की कहीं गुंजाइश न थी। वहुत-से लोग उधार ही

दूकान से माल ले जाते तथा समय पर पैसा नहीं देते, परन्तु पूज्य तपस्वीजी ने अपने जीवन मे किसी से पैसे की वसूली के लिए कभी अदालत के दरवाजे न खटखटाये। कोर्ट मे केस न करने के सम्बन्ध में वे नि शक भाव से दृढ़प्रतिज्ञ थे। किसानो का कोई कार्य कभी रुक या अटक नहीं सकता था। तपस्वीजी की ओर से उनके विकास के हर कार्य मे सहायता मिलती रहती थी। सदय मानव, नगरसेठ एव गाँव के मुखिया के रूप मे उन्होंने अपना दायित्व सदा प्रामाणिकता के साथ एव निष्ठापूर्वक निभाया।

धर्म का रग सासारिक अवस्था में ही तपस्वीजी पर चढ चुका था। उनकी फूआ के पुत्र श्री हीराचन्द्र भाई दोनों आँखो से अन्धे थे, जो उन्हे धर्म के मार्ग की ओर आकृष्ट करने मे परम उपकारक निमित्त बने थे। सद्भाग्य से पूज्य देवचन्द्रजी महाराज का एक चतुर्मास दलखाणिया गाँव मे हुआ था, फलत पल्लवित धर्म-भावनाओ को समीचीन परिपुष्टि मिली। साधु-सन्तो के विहार-मार्ग के ही मध्य दलखाणिया गाँव पड़ता था। गिर-प्रदेश का अनुकूल वातावरण एव योग्य उपाश्रयादि साधन-सामग्री की उपलब्धि के चलते साधु-सन्तों एव सतियों का शुभागमन यदा-कदा होता ही रहता था।

पूज्य तपस्वी श्री माणकचन्द्रजी महाराज, पूज्य जयचन्द्रजी महाराज, पूज्य जादवजी महाराज, पूज्य पुरुषोत्तमजी महाराज, श्री भीमजी स्वामी, पूज्य माणकचन्द्रजी महाराज (बोटाद सम्प्रदाय) आदि धुरधर साधु-सन्तो तथा दीक्षास्थविर श्री उजमबाई स्वामी, श्री मोतीबाई स्वामी आदि साध्वीमण्डल का आवागमन बराबर बना रहता था, फलत हमारे चरित्रनायक की वर्धमान धर्म-भावना एव विरक्ति-वृत्ति को यथावश्य पोषण मिलता ही रहा।

एक वार व्यावसायिक कार्य के निमित्त कलकत्ते में उनका आना हुआ। कलकत्ते के पास ही २० तीर्थंकरों के निर्वाण कल्याणक की पवित्र भूमि श्री सम्मेद शिखरजी हैं। शिखरजी की यात्रा का यह विरल प्रसंग भी उनके जीवन को सही दिशा की ओर पलटने में उपकारक निमित्त वना। विहार प्रदेश की गरीवी का उनके कोमल हृदय पर गंभीर असर हुआ था। घर पहुँचते ही वेले-वेले का वर्षी तप करने का विकट निर्णय उन्होंने किया। यह वर्षी तप धर्म-भावना की प्रवल वृद्धि में परम सहायक सिद्ध हुआ। वेले का वर्षी तप पूर्ण होते ही तेले (तीन उपवास) का वर्षी तप प्रारंभ किया।

इस प्रकार के घोर तप एवं सत्समागम का परिणाम यह निकला कि वर्धमान तपोभावना विरक्ति-वृत्ति के रूप में परिणत हो गयी। अन्तःकरण में वैराग्य-भाव के अंकुर प्रस्फुटित हुए। सवसे वड़े पुत्र श्री वचु भाई इधर गृहकार्य-भार वहन करने योग्य वन चुके थे। अतः घर के दूसरे सभ्यों के साथ योग्य विचार-विनिमय करने के पश्चात् सवकी हार्दिक सम्मति मिलते ही उन्होंने गृह-त्याग कर भागवती दीक्षा लेने का मानसिक संकल्प किया। इधर सद्भाग्यवश स्व० गुरुदेव पूज्य प्राण-लालजी महाराज साहव के दलखाणिया पधारने का आकस्मिक संयोग भी आ मिला। वैराग भावना को इससे योग्य पुष्टि मिली। हार्दिक सात्त्विक भावनाओं के अनुरूप ही योग्य गुरु से भेंट हुई। गुरुदेव ने वयस्थ होने पर भी परम तपस्वी होने के नाते उन्हें दीक्षा प्रदान करने की स्वीकृति दे दी।

पूज्य तपस्वीजी वहुत अंशों में यदि क्रान्तिकारी एवं सुधारक विचारों के थे, तो कितनी ही पुरातन मान्यताओं को विना किसी परिवर्त्तन के उसी रूप में स्वीकार कर लेने के भी एकान्त पक्षपाती थे। अपने छोटे-से गाँव

में कितने ही नये परिवर्त्तन उन्होंने किये, तो कितनी ही प्राचीन धार्मिक रूढ़ियों का पुनरुद्धार भी किया। आज भी दलखाणिया में प्राचीन अर्वाचीन के सगम के रूप में मिश्रित परिवर्त्तन को उनके स्मारक के रूप में यथापूर्व सुरक्षित देखा जा सकता है। ग्रामीण जनता के हृदय को वे जीत चुके थे। उनकी सर्वोपरिता बिना ननु-नच के सभी को अबाधित रूप में स्वीकार थी। ग्रामीण जनता को उनमें अपूर्व श्रद्धा एव प्रतीति थी, जिसका परिणाम यह हुआ कि लोगों ने उन्हें अपने हृदय-सिंहासन पर आसीन कर लिया, व जन-जन के हृदय-सम्राट बन गये। अज्ञानता के कारण चले आ रहे अन्धविश्वासो एव आशकाओं से उन्होंने जनता को सदा बचाया तथा उत्क्रान्ति एव विश्वास का नया राजमार्ग बताया।

गुजरात में नवरात्रि-महोत्सव बड़े धूम-धाम से मनाया जाता है। तपस्वीजी ने दलखाणिया ग्राम में इस महोत्सव को बदलकर सर्वथा सात्विक स्वरूप दे दिया। धार्मिक एव सात्विक मनोरजन की दृष्टि से उन्होंने सुन्दर नाटकों का आयोजन किया। दैवी शक्ति की भक्ति का वास्तविक स्वरूप ग्रामीण जनता के हृदय में स्थान पा जाए, वैसी ही व्यवस्था उन्होंने खड़ी की। नवरात्रि के अत में अन्नभोजन की अति सक्षिप्त मर्यादा को विस्तृत कर आसपास के दस गाँवों के बालकों और समस्त हरिजनों को भी इस दिव्य महोत्सव की प्रसादी का लाभ मिलने की सुंदर योजना उन्होंने प्रारम्भ की, जो अद्यावधि सुरक्षित रूप में यथापूर्व चल रही है।

गाँव में सामान्य जनों के लिए स्कूल, पुस्तकालय आदि परम हित-कारी सस्थाओं को जन्म देकर पूज्यश्री ने ग्रामीण जनता की ज्ञानवृद्धि एव सात्त्विकता-वृद्धि में परम सहयोग दिया। कुँओ का सुधार करके पानी भरने के कष्ट से बहिनो को उबारा। गाँव की स्वच्छता एव सुन्दरता के

लिए आवश्यक सभी परिवर्त्तन एवं परिवर्धन उन्होंने किये। तपस्वीजी ने इस प्रकार अपने को ज्यादा-से-ज्यादा जनोपयोगी बनाने की जीवन-प्रणाली के निर्माण का एक अनुपम आदर्श उपस्थित किया, जिसे ग्रामोद्धार का जीवन-यज्ञ कहने में भी कोई अतिशयोक्ति नहीं।

पूज्य तपस्वीजी के पवित्र जीवन की कितनी गहरी छाप दूसरों पर पड़ती थी, उसका एक छोटा-सा उदाहरण देकर यह प्रकरण समाप्त करूँगा। उन्होंने एक कृषक श्री भाणजी भाई का पालित पुत्र के रूप में पालन-पोषण किया था। धीरे-धीरे घर के धार्मिक वातावरण का रंग इस तरह चढ़ा कि धर्मानुराग एवं वैराग्यवृत्ति से रंजित हो पूरे परिवार में सबसे पहले उन्होंने ही भागवती दीक्षा का भव्य मार्ग स्वीकार किया और सबके लिए वह मार्ग खोल दिया।

इस प्रकार सर्वानुकूलता, सुख, समृद्धि एवं वैभव-युक्त गृहस्थाश्रम का परित्याग कर पूज्य तपस्वीजी ने जैन संत बनने का दृढ़तम निर्णय किया। स्वर्गीय पूज्य गुरुदेव श्री प्राणलालजी महाराज साहब का स्वाभाविक रूप से वहाँ पदार्पण हुआ। तपस्वीजी ने उन्हीं के चरणों में अपने-आपको समर्पित करने का संकल्प किया। गुरुदेव को उनमें असाधारण व्यक्तित्व से परिपूर्ण विविध शक्तियों के दर्शन हुए और उन्हें अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कर भागवती जैन दीक्षा देने की सहर्ष अनुमति (सम्मति) प्रदान कर दी।

• • •

२

पूज्य तपस्वीजी : साधक-साधु-स्वरूप में

बगसरा स्थानकवासी जैन सघ भक्तिभाव एव श्रद्धा की दृष्टि से सौराष्ट्र के सघों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। स्व० गुरुदेव श्री प्राणलालजी महाराज साहब का दीक्षा-निर्वाण-धाम भी बगसरा शहर ही है। इस क्षेत्र पर उनकी सुविशेष कृपादृष्टि रही, अत पूज्य तपस्वीजी की पवित्र दीक्षा के भव्य प्रसग के लिए भी स्वभावत यही क्षेत्र पसद किया गया। तपस्वीजी की तीसरी पुत्री कुमारिका प्रभाबाई भी अपने पूज्य पिताश्री के साथ ही दीक्षित होने का निर्णय ले चुकी थीं। उस समय उनकी उम्र मात्र १६ वर्ष की थी।

बड़े समारोह के साथ पिता-पुत्री की दीक्षा सम्पन्न हुई। बगसरा में यह महामहोत्सव अभूतपूर्व रहा। दस हजार की भीड़वाली मानव-मेदिनी की उपस्थिति ने दीक्षा की शोभा की अभिवृद्धि में अद्भुत दृश्य खड़ा कर दिया था। हृदय को हिला देनेवाले इस आकर्षक प्रसग में रतनाणिया गाँव के समस्त प्रजाजनों के साथ लगभग ७०० हरिजन नर-नारी भी उपस्थित थे, जो अपनी आँखों से अनवरत गगा-यमुना बहा रहे थे। उन्हें लगता था कि हमारा पिता, हमारे हृदय का राजा,

हमारे सुख-दुःख का साथी एवं संरक्षक हमें बिलकुल अनाथ छोड़कर सदा के लिए हमसे दूर—सुदूर चला जा रहा है।

पूज्य तपस्वीजी ने सन्निष्ठापूर्वक गुरुदेव के सान्निध्य में आत्म-शुद्धि के लिए परम उपासना प्रारंभ की। दीक्षा लेते ही पुनः छठ के उपवास (द्विदिवसीय उपवास) आरंभ कर दिये और शास्त्रों के नवनीत रूप थोकड़ों का अभ्यास भी ज्ञान-वृद्धि के लिए शुरू किया। उनके त्याग-वैराग्य की गहरी छाप आम जनता पर पड़ने लगी। वर्षों तक बेले-बेले (छठ-छठ) की तपस्या चालू रही। और छठ-छठ की तपस्या पूर्ण होती, कि इसके पूर्व ही अठम (तीन दिन तक उपवास कर चौथे दिन आहार-ग्रहण) तप का प्रारंभ कर दिया। इस घोर तप की आराधना में उपवास के तीनों दिनों तक बराबर वे विहार करते और चौथे दिन सामने के गांव में जाकर पारणा (आहार-ग्रहण) करते। एक तरह से उन्होंने सच्चे अर्थ में काया की माया ही समेट ली थी।

इस महातप के समय मिष्टान्न उनके लिए सर्वथा त्याज्य रहा। छोटी-बड़ी बहुत-सी वस्तुओं का त्याग कर आहार-सदाचार का पालन उनके जीवन की अन्यान्य विशेषताओं में एक विशिष्ट विशेषता थी। धीरे-धीरे वे गुजराती भाषा में अपने लाक्षणिक ढंग से व्याख्यान भी देने लगे। उन व्याख्यानों में उनके निजी अनुभवों के सचोट व्यंग्य रहते, जो श्रोता-जनों के अन्तःकरण में गहरी छाप छोड़ जाते।

जन्माक्षरों के आधार पर अपने आयुष्य के विषय में पूज्य तपस्वीजी की अपनी एक विशिष्ट कल्पना थी। उनकी कल्पना की निश्चित तिथि जैसे-जैसे समीप आती गयी, वैसे-वैसे धारी शहर में घोर तप का घोर अनुष्ठान उन्होंने शुरू किया। वहीं अंतिम संथारा कर लेने की उनकी अपनी धारणा थी। धारी से कुछ ही मील दूर गिर-जंगल में साणा

नामक एक पर्वत है। तपस्वीजी की हार्दिक मनोभावना इसी साणा पर्वत की किसी गुफा में रहकर सलेखना महातप की आराधना के साथ समाधि-मरण (पंडित-मरण) का सौभाग्य प्राप्त करने की थी।

पूज्य तपस्वीजी ने इस महातप के अनुष्ठान के लिए गुरुदेव से आज्ञा मांगी। गुरुदेव दीर्घ दृष्टिवाले थे। भविष्य के गर्भ में कोई अगम्य रहस्य छिपा हुआ था। पूज्य तपस्वीजी के मंगलतप से पूर्वभारत के क्षेत्र अभी पावन होने को शेष ही थे। उनकी तप पूतता से पूर्वभारत के क्षेत्रों का उद्धार होनेवाला था। अत गुरुदेव ने जगल में तप का—महातप का—अनुष्ठान करने की अनुमति तो न दी, किंतु धारी उपाश्रय में ही विशेष तप करने के लिए प्रेरित किया। 'आणाए धम्मो' गुरु-आज्ञा—यही परम धर्म है, इस बात को पूज्य तपस्वीजी ने भी अन्तःकरणपूर्वक मानकर गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य की।

योग्य परामार्श एव विचार-विनिमय के पश्चात्, जैसा कि ऊपर बताया गया है, पूज्य तपस्वीजी ने धारी में उग्रतप की उपासना करने का निर्णय किया। अठम (तेले) के पारणे में आयबिल (रूखा-सूखा नीरस आहार) करने लगे। चौथे दिन पारणे में आयबिल में भी नीरस चावल पानी में घोलकर लेने लगे। परिणाम यह हुआ कि इस तरह की घोर तपश्चर्या से उनका शरीर कल्पनातीत रूप से एकदम जीर्ण हो गया। मात्र ७२ रतल वजन रह गया था। असाधारण शारीरिक कमजोरी रहने पर भी इस घोर तप के बीच वे प्रतिदिन १०८ चत्तारि मगलम् कहते और १०८ बार वदना करते। छ-छ घण्टे का कायोत्सर्ग भी वे करते थे। फलत पूज्य तपस्वीजी के दर्शन के लिए सख्यातीत दर्शनार्थी धारी आने लगे।

आयुष्य का वल प्रवल था। जैन दर्शनानुसार निकाचित वंध था। हजारों लोगों का कल्याण होना अभी अवशिष्ट था। जो तिथि पूज्यश्री की कल्पना में निधन-तिथि थी, वह पार हो गयी। उस समय उनका छठ उपवास था। रात्रि का समय कसौटी का था। स्थिति गम्भीर-सी प्रतीत हो रही थी, परंतु आयुष्य अखण्ड वना रहा। अन्ततोगत्वा अव तपस्वीजी ने शनैः-शनैः उग्रतप को जरा नरम वना दिया, परंतु वर्षों तक छठ-छठ (वेले-वेले) का तप जारी रक्खा।

इधर सद्भाग्य से तपस्वीजी के कनिष्ठ पुत्र श्री जयंतिलालजी के मन में भी वाल्यकालीन संस्कारों के अनुरूप वैराग्य-भावना उत्पन्न हुई। वे तपस्वीजी के चरणों में आ खड़े हुए, परंतु तपस्वीजी ने पुत्र को अपने शिष्य के रूप में ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया। कारण, स्वभाव से ही वे सर्वथा विरक्त स्वभाववाले थे। फलतः गुरुदेव श्री प्राणलालजी महाराज साहव के निकट दीक्षा दिलवाकर उन्हीं के लघुशिष्य के रूप में उनको प्रस्थापित करने में उन्होंने कृत-कृत्यता का अनुभव किया।

पूज्य गुरुदेव की विहार-यात्रा सौराष्ट्र में अखण्ड चल रही थी। गुरुदेव के मंडल में तपस्वीजी महत्त्वपूर्ण योगदान करते जाते थे। गाँवों एवं देहातों में धर्मोपदेश देने की जिम्मेदारी तपस्वीजी ने अपने ऊपर ले ली थी। किसानों एवं सामान्य प्रजा को दया-धर्म की वातें लोकभाषा में वे जितनी सरलतापूर्वक समझाकर हृदयंगम करवा सकते थे, उतनी सरलतापूर्वक समझाना दूसरों से शक्य न था।

कुछ ही वर्षों के वाद तपस्वीजी की चौथी कुमारिका पुत्री जया वेन ने भी वहुत धूम-धाम से सावरकुंडला नगर में भागवती दीक्षा अंगीकार की। यह समारोह भी असाधारण था। तीन वहिनों की एक ही साथ दीक्षाएँ थीं। तीनों वालब्रह्मचारिणी कुमारिकाएँ थीं।

इस तरह तपस्वीजी के अपने परिवार में से पाँच दीक्षाएँ (पिता, दो पुत्रियाँ, एक पुत्र तथा एक पालित पुत्र श्री भाणजी महाराज) सम्पन्न हुई। सम्पूर्ण सौराष्ट्र में तपस्वीजी के उज्ज्वल परिवार की यशोगरिमा फैल गयी। गोंडल सम्प्रदाय के आद्यप्रवर्तक पूज्य डूगरसिंहजी महाराज के पवित्र परिवार में पाँच-पाँच दीक्षाएँ हुई थीं, उसीसे मिलते-जुलते इस उदाहरण ने पुन तपस्वीजी के परिवार के रूप म एक नये स्वरूप में आकर जन-समाज को आश्चर्यमुग्ध बनाया। श्री जयतिलालजी की दीक्षा के बाद तपस्वीजी का मन और भी अधिक सुस्थिर हो गया। गुरुदेव की शिष्य-मडली ने सौराष्ट्र में अपनी विशिष्ट प्रतिभा से अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। तपस्वीजी महाराज गुरुदेव के साथ सौराष्ट्र के गिर प्रदेश के घोर वन-प्रदेश में विहार-यात्रा करने लगे। तपस्वीजी ने गृहस्थावस्था में इन प्रदेशो का पत्थर-पत्थर छान डाला था, अत दीक्षित अवस्था में इन प्रदेशों का स्पर्श करते हुए वे भूतकाल के अपने सस्मरणो को ताजा करते तथा बीते दिनों की विविध घटनाओं के आकर्षक विवरण सुनाकर गुरुदेव का हृदय आह्लादित करते।

मुनि श्री जयतिलालजी महाराज का विद्याभ्यास प्रारभ था। जेतपुर, वडिया अभ्यास के क्षेत्र थे। गुरुदेव के निकट अलग विद्याभ्यास के लिए उन्हें अभ्यास के इन क्षेत्रों में ही अनिवार्यत चतुर्मास करना था, अत गुरुदेव से अलग रहने की विवशता थी। परतु, गुरुदेव की अपने शिष्यों के प्रति असाधारण ममता रहती थी। प्रतिवर्ष एक बार दर्शन दिये बिना व रह ही नहीं सकते थे। शिष्यों के विकास के वे बड़े पक्षपाती थ। यही कारण था कि मुनि श्री जयतिलालजी महाराज वेदात एव न्याय के सविशेष अभ्यास के लिए काशी-बनारस तक पहुँचने का सकल्प कर सके। पूज्य तपस्वीजी

का सौराष्ट्र का अन्तिम चतुर्मास कालावड़ में हुआ। उस समय गुरुदेव का चतुर्मास जामनगर शहर में था।

कालावड़ के अन्तिम चतुर्मास के समय मुनि श्री जयंतिलालजी म० सा० के हृदय में विशिष्ट अभ्यास की जागृत जिज्ञासा को अन्तिम रूप मिला। बनारस जाने का दृढ़तम निर्णय हुआ। इधर चतुर्मास पूर्ण हुआ। गुरुदेव जामनगर से कालावड़ पधारे। सबको खूब पारस्परिक संतोष एवं आनन्द प्राप्त हुआ। सबने साथ मिलकर सावरकुंडला की ओर विहार किया। सावरकुंडला में, जैसा कि पहले कह आये हैं, बा० ब्र० श्री जयाबाई स्वामी की दीक्षा का कार्य सम्पन्न होते ही मुनि श्री जयंतिलालजी महाराज ने काशी जाने के लिए पूर्वनिर्णीत संकल्पानुसार गुरुदेव से आज्ञा मांगी। गुरुदेव ने सहर्ष कहा—"यदि तपस्वी तुम्हारे साथ आने को तैयार हों तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।" और, पूज्य तपस्वीजी ने इस वृद्धावस्था में भी ज्ञान-यज्ञ की अनुमोदना में अपना योगदान देना सहर्ष स्वीकार किया।

वि० सं० २००४ की फाल्गुन शुक्ला पंचमी (गुरुवार ता० १५-३-४७) के शुभदिन पूज्य तपस्वीजी ने लघु मुनि श्री जयंतिलालजी म० के साथ गुरुदेव के आशीर्वादों का पाथेय लेकर सावरकुंडला से काशी की ओर प्रस्थान किया। विधि की विचित्रता कौन जान सकता है? उस समय किसे यह खबर थी कि तपस्वीजी सदा के लिए अपनी मातृभूमि छोड़ रहे हैं? कौन यह जानता था कि जैन संस्कृति की पितृ-भूमि राजगृह में संलेखना महातप करके देह विलय करने के लिए वे यह कदम उठा रहे हैं?

सौराष्ट्र में पूज्य तपस्वीजी की अपनी यशोमहिमा थी तो दूसरी ओर गुरुदेव को विरह-संताप था। परंतु उभय पक्ष में ज्ञान की ओर

आत्मार्पण एवं अनुपम प्रेम था। अत विषमता में भी समता का माधुर्य ही अन्तर्निहित था। सावरकुंडला से काशी तक का विहार—अज्ञात प्रदेश का सचरण एक घोर परिषह का इतिहास था। काशी जैसे दूरस्थ क्षेत्र में जानेवाले सौराष्ट्र के स्थानकवासी साधुओं की परम्परा में पूज्य तपस्वीजी महाराज सर्वप्रथम थे।

कितने ही दिनों की लम्बी विहार-यात्रा के बाद गौरवशील गुजरात-भूमि को अन्तिम नमस्कार किया। कालावड़ के सुप्रसिद्ध श्रावक श्री छगनलाल भाई जादवजी गुजरात के अन्तिम छोरतक विहार में साथ रहे। कुंडला से क्रमश दामनगर, बरवाला, धधुका, धोलका, नडियाद, उमरेठ, ठासरा, डाकोर, गोधरा एवं दाहोद आदि मुख्य-मुख्य क्षेत्रों का अब तक वे स्पर्श कर चुके थे। दाहोद गुजरात का सीमावर्ती ग्राम है, अत गुजरात का सम्बन्ध यहीं तक अक्षुण्ण था, और, यही कारण है कि इन सभी क्षेत्रों के श्रावकों के साथ का सम्बन्ध पूज्य तपस्वीजी के अंतिम साधना-काल तक बराबर बना ही रहा।

दाहोद के बाद मालव प्रदेश (मध्यप्रदेश) प्रारम्भ हुआ। रतलाम, उज्जैन, गुणा, शिवपुरी एवं ग्वालियर आदि क्षेत्रों का स्पर्श करते हुए पूरे प्रदेश का मीठा अनुभव उन्होंने प्राप्त किया। २०-२५ मील की प्रतिदिन अनवरत विहार-यात्रा जारी थी। वृद्धवय एवं तपस्वी शरीर होने से मार्ग में तपस्वीजी को घोर परिषह पड़ता, परन्तु शांत भाव से सभी श्रम को सहन करते हुए वे निरन्तर उत्साहपूर्वक आगे बढ़ते रहे।

शिवपुरी पहुँचते ही आगरा लोहामंडी स्थानकवासी जैन संघ ने आगरा में चतुर्मास करने की हार्दिक विनती की। इधर ग्वालियर

संघ का भी चतुर्मास करने का अत्याग्रह था। अतः सारा प्रश्न दुविधा-जनक बन गया था; परन्तु पूज्य महाराजश्री की आगे बढ़ने की इच्छा एवं आगरा श्री संघ के द्वारा ग्वालियर के श्रावकों को समझा देने की क्षमता ने आगरा-चतुर्मास के मार्ग को स्वच्छ बना दिया। आगरे का चतुर्मास निर्णीत हो गया।

आगरा श्री संघ ने अभूतपूर्व समारोह के साथ उनका स्वागत किया तथा पूर्ण सफलता के साथ चतुर्मास सम्पन्न हुआ। फलतः आगरावासियों की आत्मीयता अद्यावधि विस्मृत न हो पायी। आगरे से कानपुर, इलाहाबाद होते अपने निर्धारित लक्ष्य काशी में—विद्योपासना के अनन्य क्षेत्र में—पदार्पण किया। श्री जयंति मुनि के अभ्यास के उद्देश्य से ही इस मंगल-यात्रा का प्रारम्भ हुआ था, अतः अभ्यास की सुविधा की दृष्टि से वहाँ तीन वर्ष तक स्थिरता रही। काशी, कानपुर तथा आगरा के श्री संघों ने वहाँ के अभ्यास-काल में अपनी अनन्य सेवाएँ अर्पित कीं।

इधर पूर्वभारत के मुख्य शहर कलकत्ता, जमशेदपुर तथा झरिया के श्रावक-श्राविका बारंबार दर्शनार्थ आते-जाते रहे। उन्हींके आग्रह एवं भक्ति से पूर्वभारत के ऐतिहासिक विहार की पृष्ठभूमि तैयार हुई। शनैः-शनैः कलकत्ता की ओर विहार करने के विचार परिपुष्ट हुए। पूज्य गुरुदेव ने भी कलकत्ता-चतुर्मास करने की कृपापूर्वक अनुज्ञा दी। कलकत्ता श्री संघ ने गुरुदेव के चरणों में जाकर कलकत्ता में चतुर्मास करने की स्वीकृति प्राप्त की थी। मार्ग निष्कण्टक और स्वच्छ बन चुका था। अतः पूज्य तपस्वीजी ने द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव की अनुकूलता की दृष्टि से कलकत्ते का आमंत्रण स्वीकार किया तथा उस ओर विहार करने की तैयारी प्रारंभ हुई।

मुनि श्री जयतिलालजी महाराज साहब के अभ्यास के तीन वर्षों की काल-मर्यादा में पूज्य तपस्वीजी ने 'कृष्ण चरित्र', 'इलायची चरित्र' एवं 'धर्मबुद्धि पापबुद्धि चरित्र' नामक तीन काव्यों की रचना की। इनमें से 'धर्मबुद्धि पापबुद्धि चरित्र' प्रकाशित हो चुका था। कुण्डला से काशी तक का विहार-काव्य भी सर्वप्रथम बनारस में ही रचा गया, जिसकी रचना स्वयं तपस्वीजी ने की थी।

• • •

३

पूर्वभारत में धर्म - प्रकाश

बनारस में अभ्यास के निमित्त लगभग तीन वर्षों की स्थिरता रही थी। इस सुदीर्घ अवधि में तपस्वीजी ने साहित्य-साधना की। लोक-भाषा में दोहा साहित्य लिखते हुए वे एकाग्रतापूर्वक कालयापन करने लगे। ध्यान-समाधि आदि के अनुष्ठान भी यथापूर्व चलते ही रहे। थोकड़े एवं शास्त्रों का निरंतर पारायण भी जारी ही रहा। इसी बीच सहसा उन्हें एक विशेष सुयोग मिला, और वह था शास्त्रों का आद्यन्त वाचन। स्थानकवासी समाज में ३२ शास्त्रों की असीम प्रतिष्ठा है। पूज्य अमोलक ऋषिजी महाराज द्वारा अनुवादित बतीसों शास्त्र प्रकाशित हो चुके थे। शास्त्रों को छपवाकर प्रकाशित करनेवाले सेठ श्री ज्वाला प्रसादजी के भाणेज श्री जगदम्बा प्रसादजी बनारस में गायघाट पर रहते थे। उनकी धर्मपत्नी एक बार पूज्य अमोलक ऋषिजी महाराज के ३२ शास्त्रों की पेटी लेकर धर्मस्थान में आयीं और विनम्र भाव से बोलीं, "यह पेटी मैं बनारस संघ को भेंट देना चाहती हूँ। जब जैन-भवन बने, इन्हें उसमें सुरक्षित रखिएगा।"

पूज्य तपस्वीजी की हार्दिक मनोभावना परिपूर्ण हुई। एक साथ सभी शास्त्रों को देखने एवं वांचने की उनकी कामना थी और अब वैसा

अवसर उन्हें आकस्मिक रूप से प्राप्त हो चुका था। अब हार्दिक इच्छा के अनुरूप धीरे-धीरे शास्त्रों का वाचन प्रारंभ किया। जहाँ समझ में न आता, वहाँ श्री जयति मुनिजी की सहायता लेते, उनसे पूछते और समाधान पाकर आत्म-संतोष का अनुभव करते। सभी शास्त्रों के मनन-पूर्वक वाचन में लगभग एक वर्ष और ढाई मास लगे। आंतरिक संतुष्टि के फलस्वरूप वीतराग वाणी की अनन्यता व सम्बन्ध में तब उनके मुख से सहसा ये उद्‌गार निकल पड़े—"यह तो वीतराग प्रभु की अनुभूत परम वाणी है। जगह-जगह त्याग एवं संयम से भरी पड़ी है। जिन्हें आत्मावगाहन करना है, उनके लिए इससे ज्यादा उपकारक और क्या हो सकती है?" शास्त्रों के प्रति पूज्यश्री के हृदय में विद्यमान श्रद्धा की परम भावना उपर्युक्त शब्दों से अधिक और किन शब्दों के द्वारा अभिव्यक्त की जा सकती है?

तपस्वीजी प्रत्युत्पन्नमति या स्वाभाविक औत्पातिकी बुद्धिवाले (हाजिरजवाब) थे। उनकी प्रतिभा आश्चर्यकारी एवं विलक्षण थी। मनोरंजन एवं यथार्थ व्यंग-वाणी उन्हें स्वाभाविक रूप से मिली हुई थी। एक बार का प्रसंग है कि किसी सनातनी बंधु ने प्रेम से पूछा, "आप पवित्र गंगा में क्यों नहीं नहाते?" तपस्वीजी ने उन्हें जरा भी चोट पहुँचाये बिना जवाब दिया, "भाई! गंगा मैया इतनी पवित्र है कि उसमें हम शरीर की गन्दगी डालना महापाप मानते हैं।" जैन शास्त्र एवं व्यावहारिक नीति-रीति की दृष्टि से यह कितना सुंदर करारा जवाब था, इसका स्वयं पाठक ही विचार करें।

अब बनारस से कलकत्ता की ओर उनका प्रस्थान हुआ। इस यात्राक्रम में उनका प्रथम लक्ष्य था—पटना एवं राजगृह।

श्री त्र्यंबक भाई दामाणी ने पूज्य तपस्वीजी की पूर्वभारत-यात्रा का पवित्र श्रीगणेश कराने में जो योगदान किया, वह सदा ही एक स्मरणीय विषय रहेगा। पूज्य महाराजश्री जैसे ही राजगृह पहुँचे कि सैकड़ों की संख्या में श्रावक-श्राविकाएँ उनका भव्य स्वागत करने के लिए एकत्रित हो गये। उस समय पूज्य तपस्वीराज अथवा उनके साथी श्री जयंति मुनि को क्या यह खबर थी कि जिस पवित्र राजगृह से पूर्वभारत की विहार-यात्रा का उज्ज्वल श्रीगणेश हुआ है, वहीं एक दिन पूज्य तपस्वीजी की अंतिम महायात्रा के महामहोत्सव का भी अविस्मरणीय स्थान बनेगा ?

राजगृह के पाँचों पवित्र पर्वतों के ऊपर श्री जयंति मुनि ने आरोहण किया। अवस्था के कारण उदयगिरि नामक तीसरे पर्वत, जो वृषभाकार सीधा खड़ा है, पर पूज्य तपस्वीजी ने चढ़ना उचित नहीं समझा। वे उदयगिरि की तलहटी में स्थित श्वे० समाज के 'भाताघर' के बरामदे में विश्राम लेते रहे। उस समय क्या उदयगिरि को मन-ही-मन हँसी नहीं आयी होगी कि "हे तपस्वीराज ! आज का यह किंचित् विश्राम एक दिन आपकी अंतिम साधना, आराधना एवं विश्राम की ही भूमिका है; जो एक दिन आपको पुनः मेरी गोद में खींच लाएगी !"

सचमुच हुआ भी यही। बात-की-बात में अठारह वर्ष व्यतीत हो गये। काल का एक बड़ा पर्दा पड़ गया और पुनः संलेखना महातप की आराधना ने भूतकाल पर पड़े पर्दे को चीर डाला। पूज्य तपस्वीजी अंतिम महाशांति के लिए पुनः उदयगिरि के चरण (तलहटी) की शरण में आये और बोल उठे, "जयंति ! पूर्वभारत की यात्रा के श्रीगणेश में भी मैं यहाँ बैठा था और अंतिम आराधना के लिए आज भी...।"

राजगृह के बाद का विहार तो शाही विहार था। लोगों में उत्साह, प्रेम एव सद्भाव की बाढ़ आ गयी थी। झरिया तक के विहार में प्रतिदिन ४०-५० मनुष्यों का दल सदा ही चलता रहा। इसके बाद तो और भी लोग दल में आ मिले, जिसके फलस्वरूप झरिया से बेरमो, कतरास, पुरुलिया एव टाटानगर तक के विहार में लगभग १०० से २०० मनुष्यों तक की उपस्थिति प्रतिदिन बनी रही। जमशेदपुर से कलकत्ते का विहार तो ऐतिहासिक रहा। गाँव-गाँव में जैन-शासन का डंका बजा। स्थानीय प्रजाजनो ने मास, मछली एव सुरापान का त्याग कर असाधारण धर्म-भावना एव श्रद्धा का परिचय दिया। कलकत्ते की भव्य दीक्षा का अद्भुत प्रसग, कलकत्ते का अविस्मरणीय विहार, बंगाल के छोटे-बडे देहातो मे दिया गया अहिंसा का सदेश, धर्म की अपूर्व जागृति एव धर्म का अनुपम आकर्षण आदि उनके व्यापक जीवनचरित्र में ही प्रकाशित होने योग्य विषय हैं। अत कलेवर-वृद्धि के भय से इन विषयों को यहीं स्थगित किया जाता है।

पूज्य तपस्वीजी के उग्र विहार एव धर्मोपदेश से पूर्वभारत के सभी संघ एक-दूसरे के निकटतम आ गये और विशाल सगठन की एक पृष्ठ-भूमि तैयार हो गयी। कलकत्ता श्री सघ का नेतृत्व, तपस्वीजी महाराज का मार्गदर्शन एव श्रावक-श्राविकाओं की अवर्णनीय श्रद्धा-भक्ति के कारण स्थान-स्थान के श्री सघों मे एक प्रकार की नयी जागृति की अपूर्व लहर लहराने लगी। स्थान-स्थान पर जैन-भवन निर्मित होने लगे। पूर्वभारत-विहार के दौरान तपस्वीजी की धर्म-प्रेरणा से १८ जैन-भवनों* का निर्माण हुआ।

* १ कलकत्ता २ भवानीपुर ३ हजरा स्ट्रीट, ४ जमशेदपुर ५ झुमरीतलैया, ६ साकची, ७ झरिया, ८ धनबाद, ९ कतरासगढ, १० मोतुडी, ११ बेरमो, १२ खड़गपुर, १३ रानीगज, १४ मेंधिया, १५ बालासर, १६ बनारस, १७ रांची (गुजराती स्कूल) १८ शिवसागर (स्कूल)।

विहार, वंगाल और उड़ीसा तपस्वीजी के मुख्य विहार-क्षेत्र रहे। विहार प्रांत में पटना, गया, धनवाद, रांची, पलामु, हजारीवाग एवं सिंघभूमि जिलों में यदि विशेष विहार होता रहा तो वंगाल प्रांत के हुगली, वर्द्वान, मिदनापुर, पुरुलिया, नदिया एवं मुर्शिदावाद आदि जिलों के छोटे-वड़े सभी देहातों में भी विचरते रहे। उड़ीसा में भी जगन्नाथपुरी और संवलपुर तक की विहार-यात्रा हुई। इन सव प्रदेशों में पूज्य तपस्वीजी ने लगभग वीस हजार मील की ऐतिहासिक पद-यात्रा की तथा छोटे-वड़े सभी क्षेत्रों में धर्मवाणी एवं महावीर-वाणी के अमर संदेश सुनाये।

पूज्यश्री के सौराष्ट्र छोड़ने के वाद से निर्वाण-काल तक की प्रतिदिन की डायरियां उपलब्ध हैं। डायरियों के लिखने में तपस्वीजी ने कभी आलस्य नहीं किया। निरालस्य उनके जीवन का प्रधान अंग था। संथारा के तीसवें उपवास तक की डायरी उनके हस्ताक्षरों में मिलती है, यह उनकी अप्रमत्तता का साक्षात् उदाहरण है। ये सव डायरियाँ वहुत व्यवस्थित एवं विस्तृत घटनाओं से भरी पड़ी हैं। आठ वर्षों के विहार का अपने हाथों से एक सुन्दर एवं व्यापक नक्शा भी उन्होंने वनाया, जो प्रकाशित हो चुका है। शिल्प-कला में निष्णात होने का यह प्रत्यक्ष दृष्टान्त है।

इन सभी कार्यों के साथ काव्य-लेखन का कार्य भी यथापूर्व गति-शील ही रहा। जव भी कोई देखता, लेखन-कार्य में संलग्न दीख पड़ते। लाखों दर्शक व्यक्ति उपर्युक्त वस्तुस्थिति के साक्षी हैं। आध्यात्मिकता-पूर्वक सक्रिय जीवन जीने का उनका अपना एक आकर्षक ढंग था। निष्क्रियता, प्रमादशीलता एवं अव्यवस्था उनके लिए असह्य थी। हजारों श्लोक प्रमाण लोकभाषा में रचित दोहा साहित्य की उनकी रचनाओं में

से बहुत-से ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है, शेष कुछ ही है जो अभी अप्रकाशित है। प्रकाशित ग्रन्थों मे लोकहृदय-स्पर्शक विशालकाय ग्रन्थ 'मगल विहार', 'सुदर्शन चरित्र', 'ऋषभदेव चरित्र', 'शातिनाथ चरित्र', 'गोंडल गच्छ पट्टावली' आदि है। इनके सिवाय और भी बहुत सी पुस्तके* एव जबुद्वीप का नक्शा आदि है, जिनका यथाक्रम प्रकाशन हो चुका है।

लिखने की कला के अतिरिक्त काष्ठ-पात्र रगने की कला एवं रजोहरण आदि समस्त साधु-योग्य उपकरण बनाने की क्रियाओं में वे कुशल एव पारगत थे। यदा-कदा आवश्यक सभी कार्यों की पूर्ति वे स्वत कर लेते थे। प्रमाद अथवा आनेवाले कल पर किसी कार्य को छोडने एव टालने की मनोवृत्ति उनमे नाममात्र को भी न थी।

पूर्वभारत में तपस्वीजी ने १८ यशस्वी चतुर्मास किये, और वे सभी अपनी-अपनी दृष्टि से अनेकविध महत्त्वपूर्ण रहे हैं। हरएक चतुर्मास मे उच्च कोटि की तपश्चर्या, विविध दान-पुण्य, लोकोपयोगी सस्थाओं का सस्थापन, फण्डफाला (पुण्यकार्य के लिए चन्दा या धन-सग्रह) तथा अनेक धार्मिक उत्सवों के आयोजन मुख्यत होते थे।

कलकत्ते के प्रथम चतुर्मास में ही सस्त भोजनालय की स्थापना हुई थी, जो आज विशाल वटवृक्ष के रूप मे मध्यवित्त के अनेक स्वधर्मी

* १ धर्मबुद्धि पापबुद्धि चरित्र, २ कृष्ण चरित्र, ३ इलायची चरित्र, ४ गुणगुण-माला ५ अष्टवर्ष विहार मान-चित्र, ६ सौ मील रेवलनो गुजराती दोहानुवाद, ७ बारह भावना, ८ निर्यन्त्र प्राणीरक्षा, ९ पुण्यचोसी, १० अतिम महाकपारस।

† अठारह चतुर्मासों का लाभ निम्नक्षेत्रों को निम्न परिमाण में मिला है —

बनारस	४	जमशेदपुर	२	खड्गपुर	१	धनबाद	१
झरिया	३	रांची	२	कतरासगढ़	१		
कलकत्ता	२	भाजुड़ी	१	बेरमो	१		

बंधुओं के लिए आशीर्वाद एवं आश्वासन का संतोपप्रद स्थान वना हुआ है। इन सारे कार्यों मे पूज्य तपस्वीजी का ही विशिष्ट मार्गदर्शन प्रमुख रहा है। कलकत्ते के दूसरे चतुर्मास में लाखों रुपयों की निधि (फंड) एकत्रित हुई और इज़रा स्ट्रीट में जैन भोजनालय का मकान खरीद लिया गया। आज इस संस्था के स्थापित हुए पन्द्रह वर्ष पूरे होने को आये हैं। अबतक का आय-व्यय एवं ध्रुव-फंड (स्थायी-कोष) दस-बारह लाख की मर्यादा का भी अतिक्रमण कर चुका है।

जनसाधारण के लिए ऐसी-ऐसी परम उपकारी योजनाओं को क्रियान्वित कराने एवं सांगो-पांग सफल वनाने में तपस्वीजी अपनी अनोखी विशिष्टता एवं प्रतिभा रखते थे। अन्यथा विविध रंग-वैविध्य से भरे-पूरे समाज में ऐसे व्यापक सामाजिक कार्यों का निर्विघ्न सम्पन्न होना अशक्य-सा प्रतीत होता है।

पूर्वभारत की इस अपूर्व विहार-यात्रा में भारतवर्ष के विविध क्षेत्रों के विविध महापुरुषों का भी पूज्य तपस्वीजी के साथ समागम होता रहा। दिगम्बर समाज के प्रसिद्ध आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज, श्वे० मूर्त्तिपूजक तपागच्छ के प्रखर आचार्य श्री विजय रामचन्द्र सूरीश्वरजी, श्वे० तेरापंथ के एकमात्र आचार्य श्री तुलसी गणीजी से उनका आकर्षक परिचय हुआ, तो स्थानकवासी सम्प्रदाय के कविवर्य श्रद्धेय श्री अमर-चन्द्रजी महाराज साहव के साथ सात महीने रहने और सात सौ मील तक विहार करने का सद्भाग्य भी मिला। कविवर्यश्री स्वयं पूज्य तपस्वी-जी के जीवन-कवन एवं निस्पृहता से वहुत प्रभावित हुए। 'ऋषभ चरित्र' की प्रस्तावना लिखकर कविवर्य ने पूज्य तपस्वीजी के प्रति अनन्यता एवं अप्रतिम श्रद्धा का स्वर्णकलश चढ़ाया। पंजाव के स्थानकवासी संत श्री सुशील मुनिजी से भी सुखद परिचय हुआ। तपस्वीजी की

ओर उनका अद्भुत आकर्षण रहा। पाँच सौ मील लम्बी विहार-यात्रा इसीका दृष्टान्त है। सरलस्वभावी श्री हीरालालजी महाराज तथा पंडित श्री प्रतापमलजी महाराज से भी उनका निकटता से परिचय हुआ और संत बालजी जैसे सुधारक मुनियों के भी प्रेमपूर्वक सहवास में वे आये। श्री ब्रह्मऋषिजी महाराज तो पूज्य तपस्वीजी को हृदय से चाहते रहे। आजतक उनके भक्तिभाव से भरे पत्र बराबर आते रहे हैं। श्री चन्द्रप्रभ सागरजी महाराज का परिचय भी अत्यन्त आकर्षक एवं सद्भावपूर्ण रहा।

बा० ब्र० श्री जयाबाई स्वामी, बा० ब्र० श्री विमलाबाई स्वामी तथा बा० ब्र० श्री हंसाबाई स्वामी विशेष रूप से तपस्वीजी के दर्शन एवं सेवा की उत्कृष्ट भावना से ही सौराष्ट्र से पूर्वभारत की ओर पधारी थीं। पूर्वभारत में ६-७ वर्षों तक सतत विहार कर इन सतियों ने वयोवृद्ध तपस्वीजी की स्तुत्य सेवा की तथा प्रसंशनीय साता पहुँचायी।

जो-जो साधु या साध्वी पूज्य तपस्वीजी के परिचय में आये, वे सभी तपस्वीजी की स्वाभाविक विनोदवृत्ति, स्फूर्ति, तप शक्ति तथा असंगता से प्रभावित हुए बिना न रहे। पूर्वभारत में आदर्श संत श्री विनोबाजी से भी उनका ठीक ठीक परिचय रहा। पूज्य तपस्वीजी के ४१वें उपवास और पालकी की अन्तिम विदाई के हृदयद्रावक प्रसंग में श्रद्धा प्रेमपूर्वक श्री विनोबाजी की उपस्थिति एवं भावपूर्वक पूज्य तपस्वीजी के दर्शन एवं चरणों में नमन तो हजारों लोगों के प्रेम एवं आकर्षण के कारण बने।

गृहस्थ श्रावक-श्राविका-रूप भक्तों ने भी तन-मन धन से यथाशक्य उत्कृष्ट भावना से निरवधि सेवाएँ अर्पित कीं, परन्तु उन सबके नामों

का इस छोटी पुस्तिका में उल्लेख अशक्य होने से हम क्षंतव्य हैं। पूज्य तपस्वीजी का धनवाद का अंतिम चतुर्मास भी बहुत सुव्यवस्थित रीति से शांतिपूर्वक संपन्न हुआ। इस चतुर्मास में तपस्वीजी ने १५ उपवास किये, मानो वे अपना आत्मपरीक्षण एवं शक्ति-संतुलन करते हों। अभूतपूर्व ठाट-बाट और बहुत धूम-धाम से वह उत्सव पूर्ण हुआ। तपस्वीजी ने अपूर्व साता के साथ पारणा किया।

• • •

४
उदयगिरि की राह पर

पूज्य तपस्वीजी ने धनवाद के चतुर्मास-काल मे सथारा के सम्बन्ध में कभी नाम-निर्देश अथवा शब्दोच्चारण तक नहीं किया था। परन्तु, पन्द्रह उपवास की निर्मल साधना की परिपूर्णता के पश्चात् वे सदा अपने मे सलग्न से—डूबे हुए-से लगते थे। कभी अचानक कह उठते, "जयति। अब मेरे में सकल्प-विकल्प या विचार का अवकाश नहीं रहा है। किसी ओर ममता का आकर्षण भी नहीं रहा है। साध्वी श्री प्रभावाई एव जयावाई को व्यवहारवश भले पत्र लिखता हूँ, परन्तु पत्र लिखने की मुझे तनिक भी इच्छा होती नहीं है।"

कार्त्तिक शुक्ला द्वादशी तक कतरास अथवा जमशेदपुर जाने का ही मानसिक कार्यक्रम था। इस सम्बन्ध मे सामान्य विचार-विनिमय भी हो चुका था। त्रयोदशी की रात्रि के बारह बजे पूज्यश्री ने अकस्मात श्री जयति मुनिजी को जगाया। वे जरा दुविधा में पड़े। उन्हे शका हुई कि कहीं कोई अकल्प्य शारीरिक कष्ट तो नहीं आ पडा है? परन्तु बात कुछ दूसरी ही थी। तपस्वीजी पास आकर बोले, "जयति! अपने को राजगृह की ओर विहार करना है। यह मेरा हार्दिक विचार है।' श्री जयति मुनिजी ने जवाब दिया, "ऐसी

भयंकर कड़कती ठंड में १५० मील का नाहक विहार बढ़ाने से क्या लाभ ?" परन्तु वे एक से दो न हुए। अपने निर्णय में वे सुदृढ़ थे। मध्य रात्रि में एकाएक जो यह आत्मस्फुरण हुआ, वह आगे चित्रित होनेवाले तपस्वीजी के भावी जीवन का एक स्पष्ट एवं उज्ज्वल रेखाचित्र है।

तपस्वीजी द्वारा आराधित संलेखना-रूपी महातप का मूल स्रोत धनबाद की आत्मस्फुरण-रूपी गंगोत्री में से प्रकट हुआ था, जो उदयगिरि की तलहटी में जगद्व्यापी बना और बाद में लाखों लोगों को श्रद्धा का मधुर फल आस्वादन करानेवाला महानद बन गया। धनबाद से तपस्वीजी तथा जयंति मुनि राजगृह पधारे। राजगंज, निमयाघाट, इसरी, बरही, कोडरमा, रजौली, नवादा होते हुए पूज्यश्री ने गया रोड से राजगृह की पहाड़ियों में प्रवेश किया।

उनकी अंतिम समाधि जहाँ होनेवाली थी तथा जहाँ वे इस महातप का अनुष्ठान करने के लिए 'अठे द्वारिका' करके बैठनेवाले थे, उन्हीं स्थानों के पास से गुजरते हुए राजगृह में उनका पदार्पण हुआ। परंतु उन स्थानों पर उस समय कैसा दृष्टिपात हुआ होगा, यह तो विधाता ही जाने! राजगृह की धर्मशाला में रह रहे बहुत-से भक्तिशील श्रावक-श्राविकाएँ ठेठ बाणगंगा तक उन्हें लेने आये थे। उस समय का दृश्य अद्भुत था। महावीर प्रभु के जयनाद के साथ उनका नगर-प्रवेश हुआ।

धर्मशाला की बगल में अवस्थित आरोग्य-भवन में पूज्य तपस्वीजी ने निवास किया। पश्चिम भाग का अंतिम फ्लेट उतरने के लिए मिला था। ता० १२-१२-६७, मंगलवार के शुभ दिन राजगृह में

उनका पदार्पण हुआ था। बहुत शांति, स्थिरता एव गभीरतापूर्वक तपस्वीजी ने अपनी दिनचर्या स्थिर की। इस बार व ज्यादा गभीर थे एव दृढ निर्धार पर अपने-आपको स्थिर बना रहे थे, परन्तु बाह्य व्यवहार में इस आतरिक महानिर्णय की आभा या झलक तक नहीं मिलती थी।

अपने अतिम महातप (अपश्चिम सलेखना तप) की आराधना के लिए निर्वाचित यह अद्भुत रमणीय प्राकृतिक स्थली और ऐतिहासिक नगरी राजगृह की अपनी अद्वितीय विशेषताएँ हैं। पाठकों को ज्ञात ही होगा कि यह वही राजगृही नगरी है, जिसके इतिहास के वर्णन से शास्त्रों के पन्ने-के-पन्ने भरे पडे हैं। यह वही राजगृह है, जहाँ प्रभु मुनि सुव्रत स्वामी के चार कल्याणक हुए। यह वही राजगृह है, जहाँ प्रभु महावीर के बिम्बिसार (श्रेणिक) एव अजातशत्रु जैसे अप्रतिम भक्त हुए। यह वही राजगृह है, जहाँ प्रभु महावीर ने स्वय चौदह वर्षावास (चतुर्मास) किये। यह वही राजगृह है, जहाँ धन्ना शालिभद्र जैसे महातपस्वियों ने अपनी देह के रज-कणों को सलेखना तप की आराधना से वैभारगिरि पर्वत पर विलय कर दिया तथा अति मुक्तक कुमार ने विपुलाचल पर्वत पर। यह वही राजगृह है, जहाँ आर्य सुधर्मा स्वामी ने हमारे चरित्रनायक की निर्वाण-तिथि माघ सुदी सप्तमी के शुभ दिन ही परम निर्वाण पाया था। यह वही राजगृह है, जहाँ नदमणियार और उसकी दर्दुर अवस्था का इतिहास भी शास्त्रों में स्थान पाकर मगलरूप बन चुका है। यह वही राजगृह है, जहाँ विपुलाचल, रत्नगिरि, उदयगिरि, स्वर्णगिरि और वैभारगिरि का वैभव, उनका अप्रतिम नैसर्गिक सौंदर्य, अगणित महापुरुषों की अतिम साधना और उनके पवित्र रजकण आज भी असख्य भक्तों के कोमल हृदयों मे भक्ति के अनुपम भाव उत्पन्न किये बिना नहीं रहते।

असंख्य संतों, सतियों एवं मुनियों को अपने शीतल उत्संग में समा लेनेवाले इन पर्वतों का इतिहास शब्दों की मर्यादा का अतिक्रमण कर जाता है। आज इस राजगृह पर्वत के मूँगे-से लगते ये पत्थर, ये रजकण और ये वनस्पतियाँ असंख्य महापुरुषों की परम साधना के परम साक्षी हैं। राजगृह के साथ जैनों की स्वतः आत्मीयता है। राजगृह नगरी, गुणशील चैत्य, श्रेणिक राजा एवं चेलना राणी—ये शब्द जैन लोगों के मुख पर नाचते रहते हैं। हृदय में गंभीरतम स्थान पाये हुए एवं अंतःकरण में अंकित ये शब्द भूतकाल के भव्य इतिहास को नये स्वरूप में सामने लाते हैं।

जैन, बौद्ध, सनातनी, सिक्ख एवं मुसलमानों के लिए अर्थात् भारतवर्ष की सभी मुख्यतम कौमों के लिए यह भागवद्भूमि (तीर्थ-भूमि) राजगृह सचमुच पवित्र एवं आकर्षक स्थली है। वैभारगिरि की तलहटी में सतत बहती सप्तधारा (सात गरम पानी के झरने) जनसमुदाय की शारीरिक पीड़ा तो हरती ही है, दूसरी ओर पर्वतों के बीच बहती अध्यात्म-ज्ञान की निर्झरिणियाँ मानसिक क्लेशों एवं दुर्वासनाओं का अपहरण कर परम शांति प्रदान करती हैं। ऐसी यह आदर्श राजगृह नगरी बहुत पहले से ही हमारे इन तपस्वी योगिराज के हृदय, मन और आत्मा में रम गयी थी, अद्भुत स्थान पा चुकी थी।

× × ×

तपस्वीजी राजगृह में श्वे० जैन कोठी की बगल में स्थित आरोग्य-भवन में ठहरे थे। धनबाद से राजगृह तक के विहार की श्रान्ति को उतारने के लिए उन्होंने तीन दिनों तक आराम किया, तदनन्तर श्री जयंति मुनि के साथ पाँचवें पर्वत श्री वैभारगिरि पर स्वयं भी

चढ़े। ८० वर्ष के वृद्धवय में उनका पर्वत पर चढ़ना ऐसा लगता था, मानो सलेखना के सम्बन्ध में धन्ना शालिभद्र से विचार-विनिमय करने की प्रबल भावना उनके हृदय में काम कर रही हो। कारण, वहीं सलेखना तप करने के सबन्ध में तपस्वीजी ने चर्चा तो की, परन्तु ईश्वर जाने, उदयगिरि ही जैसे अपनी गोद में विश्रांति हेतु आमत्रण दे रहा था, अत उनके हृदय को समीचीन सतुष्टि वहाँ न मिल पायी। सायकाल वे वैभारगिरि से नीचे उतरे। वृद्ध अवस्था, तपस्वी देह एव बहुत ऊँचाई होने के चलते तपस्वीजी को बहुत श्रान्ति का अनुभव हुआ। अत एक दिन आराम कर लेने के बाद तपस्वीजी पुन उदयगिरि पधारे।

पूज्यश्री प्रात ही उदयगिरि पधार चुके थे। श्री जयति मुनि कुछ विलम्ब से आये। परतु जैसे ही वे उदयगिरि पहुँचे, उन्होंने तपस्वीजी को बहुत हर्ष में देखा। आनदातिरेक में बोल उठे, "जयति। यह स्थल बहुत सुन्दर। बहुत आकर्षक। श्री जयति भाई का बड़ा उपकार। बस, मेरी आत्मा यहीं विश्रान्ति पा गयी है, अपने तो अठे ह्राकिा।" ऐसा बोलते ही उनके मुख पर अपूर्व हास्य लहराने लगा।

अहा। विधि की कैसी विलक्षणता है? जहाँ सामान्य मनुष्य को किसी स्थल पर यदि भूल से भी मृत्यु की गध लग जाए तो वह उस स्थान से सैकड़ों योजन दूर पलायन करने का प्रयत्न करेगा, वहाँ हमारे तपस्वीजी जैसे वीर पुरुष स्वय अपने देह-विलय के लिए शात, निर्जन प्राकृतिक स्थान का शोध कर रहे थे।

तपस्वीजी ने ता० २१-१२-६७ गुरुवार को उदयगिरि जाने का निश्चय किया और तब तक पूर्वभूमिका रचते रहे। ता० २३-१२-६७,

शनिवार को उनका अपना जन्म-दिन पड़ रहा था, जिसे वे भावी आराधना का प्रारंभ-चिह्न एवं सीमा-चिह्न बनाना चाहते थे।

तपस्वीजी बोल उठे, "जयंति ! कैसा सुन्दर योगानुयोग है ! बराबर ही मेरा जन्म-दिवस आ रहा है। इससे ज्यादा सुन्दर योग दूसरा नहीं है।" पौष कृष्णा सप्तमी को उनका जन्म-दिवस था. अतः दृढ़तापूर्वक दुहराया, "देख, सातम (सप्तमी) से ही संलेखना का आराधन करना है। बा० ब्र० श्री ललिताबाई स्वामी का कुछ दिन रुकने का आग्रह समझा जा सकता है, परंतु मेरे मानसिक दृढ़ निर्णय में मेरा जन्म-दिन ही है। मुझे लगता है कि माघ शुक्ला षष्टी को मेरा ग्रह बदलता है, उस दिन तक तपाराधन चलेगा ही। तब तक सब कुछ यथानुकूल हो ही जाएगा, अतः विलम्ब उचित नहीं है।"

ता० २०-१२-६७, बुधवार के दिन राजगृह में उपस्थित श्री जयाचंद भाई हेमाणी आदि भाइयों को बुलाकर श्री जयंति मुनि ने सूचना दी कि "कल यहाँ से विहार करके उदयगिरि की तलहटी में जाना है। वहाँ तपस्वीजी दो दिन आहार स्वीकार करेंगे और ता० २३-१२-६७, शनिवार को वे अपना पूर्वनिर्णीत मंगलतप प्रारंभ करेंगे।"

तपस्वीजी के निकटस्थ श्रावकों को साधारण आभास तो था, पर उपर्युक्त स्पष्ट वार्त्ता से वे आश्चर्यान्वित हो गये। वायु-वेग से सारे समाचार फैल गये। कलकत्ता तार-टेलीफोन एवं डाक विभाग के चक्र गतिमान हुए। शुभ दिन शुक्रवार के १०-३० बजे उदयगिरि की ओर विहार निश्चित हुआ। तपस्वीजी अपनी गिनती के अनुसार ही अपने कदम भरने लगे।

ता० २१-१२-६७, गुरुवार के दिन जल्दी खाना-पीना पूर्ण कर श्रावक-श्राविका एवं अन्य दूसरे भाई भी निर्धारित समय पर उपस्थित

हो गये। प्रभु महावीर एव शातिनाथ भगवान के गगनभेदी जयनादो के साथ तपस्वीजी ने उदयगिरि की ओर प्रस्थान किया। इस समय लगभग डेढ-दो सौ नर-नारियो का समुदाय वहाँ उपस्थित था। यह एक हृदयद्रावक रोमाचक दृश्य था। तपस्वीजी के अपार साहस की प्रतिभा-आभा उनके मुखकमल पर दीप्तिमान हो उठी थी।

राजगिर के वैभारगिरि पर्वत से थोड़ी दूर उत्तर विशाल वटवृक्ष के नीचे प्रथम मागलिक-स्वर गूँजने लगे। श्री जयति मुनि का हृदय करुण भावावेश से आक्रान्त था। वे बोले, "यह कैसी विलक्षण घटना है। यहाँ उपस्थित नर-नारी इस विलक्षण घटना एव विरक्त प्रसग के साक्षी हैं। राजगृह नगरी से शुरू हुई यह यात्रा तपस्वीजी की अतिम महायात्रा का श्रीगणेश है, जिसका उल्लेख करते जीभ रुक जाती है, हृदय भर आता है। अब वे पुन इस मार्ग से कभी पीछे न लौटेंगे। मुझे पुन जब अकेले आना पड़ेगा तब कैसी हृदयविदारक स्थिति होगी!" इन हृदयभेदी शब्दो ने उपस्थित जनसमुदाय की आँखे सजल बना दीं। डेढ घण्टे की शात यात्रा के बाद तपस्वीजी महाराज अपने निर्दिष्ट स्थल श्रीउदयगिरि की तलहटी में पधारे। मार्ग में धूप थी, अत आतप से रक्षा करने के लिए युवको ने लाल रग का एक दुशाला उनके सिर पर छत्र की तरह तानकर चार कोनों से पकड़ रखा था। तपस्वीजी के उत्साह एव आनद का पार न था। वे वर्धमान अध्यवसायों के साथ आगे बढ रहे थ। लाल रग के नेजे के नीचे किसी पीर की अतरिक्ष-यात्रा जारी हो, इसी भाँति वे उस समय शोभित हो रहे थे। सचमुच ही व जैनधर्म के पीर-पैगम्बर जैसे बन चुके थे। यहाँ पहुँचते ही उन्होंने अपना अन्तिम प्रवचन दिया।

भगवान महावीर की अन्तिम धार्मिक स्तुति करने के बाद मार्मिक शैली में उन्होंने अपना व्याख्यान दिया। उनका यह अन्तिम प्रवचन आज के आधुनिक ध्वनि-यंत्र (टेपरिकार्डर) में सुरक्षित है।

प्रवचन सुनकर उपस्थित एवं आगन्तुक जनता स्वगृह की ओर लौटी। अति आग्रह के बाद ता०-२२-१२-६३ को तपस्वीजी ने श्री जयंति मुनि को अपने शरीर की शुद्धि करने की आज्ञा दी। श्री जयंति मुनि ने पंच (देहशुद्धि) करके कपड़े बदलवाये। कषायों एवं शरीर से स्वतः कृश बने हुए तपस्वीजी फूल-से हलके हो गये। उस दिन उन्होंने सायंकालीन आहार भी लिया। खिचड़ी, थोड़ा दूध, बादाम की एक कतरी का आठवाँ भाग एवं तलपापड़ी का एक छोटा-सा टुकड़ा उनका अन्तिम— सर्वथा अन्तिम आहार था। श्री जयंत मुनि भी आहार में उनके साथ ही थे, परंतु उनका हृदय किसी भी तरह यह नहीं समझ सकता था कि तपस्वीजी का यह अन्तिम आहार है।

सायंकाल जब तपस्वीजी पाट पर विराजे, तो उसके पूर्व उन्होंने विशुद्ध आलोयणा की। श्री जयंति मुनि से दीक्षा के पाठ पुनः पढ़वाकर फिर से निरतिचार चारित्र धारण किया। कैसी थी ये अलौकिक घड़ियाँ कि जिनकी हरएक चेष्टा में मृत्यु (समाधि-मरण) की समतापूर्वक तैयारी थी! और, वह तैयारी भी मृत्यु के सामने निर्भीकतापूर्वक चलकर उसे हराने की तैयारी थी।

इसी दौरान लगभग १०० भाई कलकत्ते से दर्शनार्थ आ गये, सबके-सब आश्चर्य-मुग्ध हो उठे।

सूर्यास्त हो चुका था। प्रतिक्रमण अभी पूर्ण हुआ ही था कि तपस्वीजी पाट के ऊपर खड़े हो गये। उस समय उनका वीरत्व, उनका शौर्य, उनका उत्साह अनुपम—बेजोड़ था। वे बोल उठे, "जयंति मुनि,

१५ उपवास के पचक्खाण कराओ। आज से तुम्हारी आज्ञा एवं प्रारम्भ के तीन दिन मौन।"

इस अद्‌भुत साधना के मंगलप्रारम्भ के समय श्री पुष्पा देवीजी जैन एवं उनके छोटे भाई श्री जैनप्रकाशजी जैन उपस्थित थे, दोनों ही भाई-बहिन साक्षी रहे। श्री जयंति मुनि ने कठोर हृदय से संवेदन करते हुए पचक्खाण कराये। उपस्थित सभी लोगों की आँखों से अश्रु बहने लगे। मात्र तपस्वीजी की आँखें हँस रही थीं।

●●●

५

उग्रतप में मंगल-प्रवेश : मासखमण

पवित्र उदयगिरि पर्वत राजगृह के पांच पर्वतों में मध्यवर्त्ती तीसरा पर्वत है। पांचों पर्वतों में मध्यस्थ होने से ऐसा लगता है कि वह मध्यम भाव के उपदेश देने का स्वतः अधिकारी है। उदयगिरि का वृषभाकार सौंदर्य आकर्षक है। खड़ी दीवाल जैसा उदयगिरि अप्रतिम सौंदर्य एवं नैसर्गिक श्रीसमृद्धि का धाम है। इसकी तलहटी में श्वेताम्बर समाज का एक सुन्दर भाताघर है। सामने ही दिगम्बर समाज का भाताघर बनना प्रारंभ हो चुका है। एक गहरा कुआं भी है, जिसे श्वेताम्बर कोठी के तत्कालीन मैनेजर स्वर्गीय श्री कन्हैयालालजी श्री श्रीमाल की प्रेरणा से श्री मणि भाई नरसी भाई बिलखावाले ने अपने चिरंजीव दिलीप कुमार की स्मृति में वनवाया है। तपस्वीजी के इस परम अनुष्ठान के समय इस कुएँ ने भी जनता की अपूर्व सेवा की है।

उदयगिरि की तलहटी में भाताघर से पूर्व दिशा में एक सादी, निर्दोष, घास-फूस से छायी हुई कुटी तैयार थी। आगे चलकर यही कुटी संत-संलेखना-साधना-कुटीर का शुभ नाम पा गयी। इस कुटीर की सादगी आकर्षक थी—अंदर से यह श्वेत शुक्ललेश्या के परिणामसूचक

श्वेताम्बरावृत्त भी था। पुआल से ढँका हुआ शिरोवर्ती भाग महर्षियों के युग का स्मरण कराता था। कुटीर की उत्तर दिशा की ओर दो दरवाजे और एक खिड़की थी। होकायंत्र (दिशासूचक) की मदद से देखने पर यह कुटीर सचमुच ईशान कोणमुखी था।

उस दिन सारे स्थल एवं आसपास का सृष्टि-सौंदर्य नाच उठा था। लगता था कि जैसे तपस्वीजी के महातप से जड़-जगत भी प्रभावित हो खुशियाँ मना रहा हो। ता० २३-१२-६७, शनिवार से ही तपस्वीजी का उग्रतप प्रारंभ हो चुका था। प्रात चार बजे से ही स्वाध्याय का नदिघोष चालू था। सारी वनराजि हर्षित थी। उपवास के प्रथम दिन ही घनघोर जंगल की झाड़ियों में से एक बाघ वहाँ आ निकला। वह मानो तपस्वीजी के दर्शन के लिए ही आया था—सीधे चक्कर लगा कर चला गया। उसके बाद भी प्रारंभ के दिनों में दो-तीन बार उसका शांत आवागमन होता रहा।

ता० २७-१२-६७, बुधवार के दिन तपस्वीजी ने भाताघर से साधना-कुटीर में प्रवेश किया। प्रथम चार उपवास तो भाताघर में ही सम्पन्न हुए। कुटीर सर्वथा साधु-जीवन एवं साधना के योग्य बन चुका था। तपस्वीराज स्वयं स्वभाव से प्रकृतिप्रेमी थे। ऋषि-मुनियों के प्राकृतिक जीवन में उनकी असीम श्रद्धा थी। कुटीर के सामने चारों ओर आच्छादित वनराजि का अवलोकन करते समय उनके हृदय को शांति-समृद्धि का अनुभव होता। नैसर्गिक जीवन तपस्वीजी का अपना स्वाभाविक जीवन था। प्रकृति-विरुद्ध समृद्धिपूर्ण जीवन में तो उन्हें कृत्रिमता एवं अस्वाभाविकता की गंध आती थी।

प्रात कालीन स्वाध्याय साढ़े सात बजे तक मनन चलता था। आठ बजे तपस्वीजी कुटीर से बाहर आंगन में सूर्य आतपना के लिए

पधारते, जहां हजारों भावुक आत्माएं इस पवित्र पुरुष के दर्शन कर कृत-कृत्य होती थीं। प्रकृति की पवित्र गोद में बैठे हुए इस महासंत को अपूर्व शांति थी। भक्तों के साथ धार्मिक वार्तालाप के उपरांत कभी-कभी छोटा-सा प्रवचन हो जाता और कभी हितशिक्षाएं सुनने को मिलती। बारह बजे तक यह कार्यक्रम रहता।

इसी तरह दिन-पर-दिन बीतने लगे। इधर दर्शनार्थी एवं भावुक भक्तों की भीड़ बढ़ने लगी। दिन-प्रतिदिन हजारों व्यक्ति उदयगिरि के पवित्र आंगन (तहलटी) में आने लगे। अतः दर्शनार्थियों के लिए विशेष प्रकार का पंडाल बनाया गया। स्थानीय ग्रामीण लोगों का विशाल समुदाय बाढ़ की तरह उमड़ने लगा था। तपस्वीजी के मुख पर तप की कांति भी बढ़ती जा रही थी।

राष्ट्रप्रेम के रंग में रंगा हुआ वीर जैसे अपने राष्ट्र की सुरक्षा के लिए अपने प्राण गँवाकर भी नये जीवन एवं नये चैतन्य को प्राप्त करने की धन्यता की अनुभूति करता है, ठीक वैसे ही अध्यात्म-भाव के पवित्र रंग में रँगे स्निग्ध हृदयवाले प्रभु महावीर के इस वीर सरदार ने कर्म-शत्रु के साथ भयंकर आत्म-युद्ध ठानकर दिव्यता एवं प्रभुता पाने का आत्मसंतोष उपलब्ध किया, जो शब्दातीत है। यह मात्र महापुरुषों के अंतरंग अनुभव का ही एकमात्र विषय है।

अहिंसा निकेतन, बेलचम्पा के मुख्य व्यवस्थापक श्री निरंजन देव जैन ता० २७-१२-६७ से ही सेवा में उपस्थित थे। श्री तपस्वी माणेकचंद्रजी जैन विद्यालय, वढिया (सौराष्ट्र) के नियामक पण्डित रोशनलालजी भी ता० ३१-१२-६७, रविवार को नवे उपवास के दिन उदयगिरि पहुँच गये तथा पूज्य तपस्वीजी की खास अंतरंग सेवा में संलग्न हो गये। उनके आ जाने से मुनि श्री जयंतिलालजी महाराज को पूर्ण सहयोग

मिला तथा पूज्य तपस्वीजी की आत्मा को भी परम सतुष्टि हुई। दूसरे भी उल्लेखनीय बन्धु सेवा में हाजिर थे, परन्तु उन सबका उल्लेख इस छोटी-सी पुस्तिका मे करना कुछ अशक्य-सा है।

इस महापुरुष ने प्रारम्भ के कई दिनो तक किसी से तनिक भी सेवा लेना पसंद नहीं किया। नवें उपवास के दिन कुदरती शौच से पेट की मल-शुद्धि हो गयी थी। किसी भी प्रकार की असमाधि के बिना वे निरुपद्रव आगे बढ रहे थ। सुकवि श्री 'तरुण' जी जैसे बिहार के सांस्कृतिक एव सामाजिक कार्यकर्ता भी पूज्य तपस्वीजी के इस घोर तप से अत्यत आकर्षित हुए और उन्होने बड़ी निष्ठापूर्वक सेवा-कार्य मे हाथ बँटाया। श्री तरुणजी के आह्वान पर बिहार एव बिहार से बाहर के छोटे-बडे सभी पत्रो ने पूज्य तपस्वीजी क विषय में अपनी रिपोर्ट एव सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखना प्रारम किया, जिससे इस महातप के विषय की जानकारी व्यापक बनती गयी और साथ ही, उदयगिरि की जिम्मेदारियाँ भी बढने लगीं। पूज्य तपस्वीजी का मुखकमल तपस्तेज से खिलने लगा।

बिहारशरीफ, पटना एव इस प्रान्त के बहुत-से गण्य-मान्य अधिकारीगण तथा प्रधान मण्डल के सभ्यगण तपस्वीजी के दर्शनार्थ उदयगिरि आने लगे। पूर्वभारत, बबई, सौराष्ट्र एव मद्रास की ओर से भी कल्पनातीत दर्शनार्थियों का तांता लगने लगा। पूज्य तपस्वीजी षोडश कला से परिपूर्ण कलानिधि की तरह शोभा देने लगे। उनके शरीर में अद्भुत समाधि-श्री थी और दर्शकों को उनके मुख पर अपूर्व हास्य एव अलौकिक शान्ति के दर्शन होते।

तत्कालीन राज्यमत्री श्री श्यामसुन्दर बाबू दर्शनार्थ आये। पाँच मिनट तक निर्निमेष योगिराज के चेहरे को निरखते रहे फिर बोले

"बाबा तो यहाँ मुस्कुरा रहे हैं। दूसरे लोग जब कि उनके जीवन-मरण की चर्चा कर रहे हैं, तो बाबा के मन पर उसका कोई असर ही नहीं है। मृत्यु से ये कितने परे हो गये हैं!" इसी कथन से पूज्यश्री के मुख की सौम्यता एवं प्रसन्नता का अनुमान किया जा सकता है।

पूर्वभारत और उसमें भी खास करके बंगाल प्रान्त की भगवती-स्वरूपा, लाखों भक्तों की सुविशाल संख्यावाली माता आनन्दमयी भी सद्भाग्य से राजगृह पधारी थीं। राजगिर में उनका एक निजी सुन्दर आश्रम है। पूज्य तपस्वीजी के महातप के विषय में उन्हें जानकारी मिली तो वे सत्वर उदयगिरि पधारीं। तपस्वीजी के दर्शन-वंदन के बाद अपनी हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करती हुई बोलीं, "बाबा ने बच्ची को बुला लिया, बाबा बड़े दयालु हैं।" महाराजश्री का तपःप्रभाव ही ऐसा था कि उनके दर्शन मात्र से सबके हृदय में आनन्दमय करुणा बाढ़ की तरह उमड़ पड़ती।

जापान के बौद्ध-धर्मगुरु श्री फुजी गुरुजी भी अपनी शिष्य-मण्डली सहित दर्शनार्थ पधारे। बौद्धधर्म की पद्धति के अनुसार स्तुति-वन्दन करते हुए कहा, "मैं ८४ वर्ष का हूँ, आपके पीछे-पीछे मैं भी आ रहा हूँ।" पूज्य महाराजश्री इन सबसे बड़े जापानी बौद्ध धर्मगुरु की भक्ति, विनम्रता एवं सद्भावना से गद्-गद् हो गये। बड़ी श्रद्धा एवं प्रेम के साथ हाथ मिलाया तथा अपने आसन पर बिठाया। उस समय का दृश्य सचमुच अनुपम एवं अद्वितीय था।

पश्चिमी भारत के छोरवर्ती सौराष्ट्र प्रान्त से श्री दुर्लभजी भाई शामजीविराणी भी इस महाप्रसंग पर यथाशीघ्र पहुँच गये तथा जब तक संथारा न सीजा (पूर्ण न हुआ), बराबर राजगृह में स्थिर रहे। रोज

राजगृह-स्थित उदयगिरि की तलहटी में अवस्थित 'सलेखना-साधना-कुटीर'।

पूज्य तपस्वीजी को अपनी प्रणति निवेदित करते हुए जापान के बौद्ध धर्मगुरु श्री फुजी गुरुजी।

दोनों समय नियमित रूप से तपस्वीजी की सेवा का लाभ लिया। पूर्वभारत के सभी क्षेत्रों के जैन परिवार सैकड़ो की संख्या में अपने बाल-बच्चों सहित राजगिर श्वताम्बर धर्मशाला, दिगम्बर धर्मशाला, सनातनी धर्मशाला, उदयगिरि टेंट्स तथा दूसरे भाडे के मकानो में रहकर बराबर तपस्वीजी के दर्शन तथा सेवा का लाभ लेते रहे। जैन समाज के सिवाय अन्य समाज के हजारो ऐसे गुजराती भाई-बहिन इस महातपोयज्ञ के दर्शन के लिए आये जो तपस्वीजी के परिचित थे तथा आसपास के ही क्षेत्रो मे बसे हुए थे। उन सबने तपस्वीजी के चरणों में श्रद्धाजलि अर्पण की। सचमुच जो भी उनके दर्शन कर गये, वे भाग्य-शाली बन गये।

एक मास के निरतर उपवास से शनै -शनै उनका शरीर सूखता जा रहा था। शरीर में दौर्बल्य वर्तमान था, परन्तु वाणी या आवाज मे जरा भी फर्क न पड़ा था। मन से तो वे बहुत ही स्वस्थ स्फूर्तिवाले दीखते थे। पानी की मात्रा घटती जाती थी। यो पहले से ही वे बहुत कम मात्रा में पानी लेते थे। पानी चालू रखने के सम्बन्ध में राजकोट से बा० ब्र० साध्वी श्री जयाबाई स्वामी के पत्र निरंतर आ ही रहे थे। हम भी पानी बद न करने की उनसे प्रार्थना करते रहते थे।

पूज्य विनोबाजी ने पटने से खास सदेश भेजा था कि "तपस्वीजी भले उपवास जारी रखें, परन्तु पानी पीना बद न करें, ऐसी विनती करिएगा।" इसके लिए वेद-उपनिषद् के मत्र एव पाठ भी बताये थे। परन्तु पूज्य तपस्वीजी जिस मात्रा म पानी का उपयोग कर रहे थे, वह नहीं के समान ही था। इतनी उग्र तपस्या होने पर भी इन्द्रियाँ एव मन शिथिल होने के बदले स्वस्थ और सतेज बन गये थे। पचीस उपवास के बाद पूज्य तपस्वीजी के जो सदेश नोट किये जा सके,

वे इस पुस्तक के अंतिम पन्नों में संगृहीत हैं और हमारी उपर्युक्त उल्लिखित वस्तु-स्थिति के साक्षात् प्रमाण हैं।

विहार राज्य के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री महामाया बाबू भी पूज्य तपस्वीजी के दर्शन के लिए आये थे। तपोधनी के दर्शन से उन्हें धन्यता का अनुभव हुआ। प्राचीनतम जैन-संस्कृति एवं पूज्य तपस्वीजी महाराज के अद्भुत महामंगलतप की आमसभा में प्रशंसा करते हुए अपनी ओर से हृदयपूर्वक श्रद्धांजलि-अर्पण की। इस तरह मासखमण की तपश्चर्या के बीच राजनैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र के महानुभाव आते-जाते ही रहे, जिनका अति संक्षिप्त उल्लेख सूचनारूप से ही प्रस्तुत पुस्तिका में किया गया है।

एक ओर तो बड़ी धूमधाम मची हुई थी, दूसरी ओर तपोधनी अपने-आपमें अधिकाधिक अवस्थित होते जा रहे थे। बाह्य व्यवहार से निवृत्त होकर अन्तर-समाधि में डुबकी मार रहे थे, आत्मानन्द में भूल रहे थे।

पंजाबी समुदाय की विदुषी साध्वी श्री शांता देवीजी ठा० ३ बनारस से पटना पधारी हुई थीं। उन्हें पूज्य तपस्वीजी के महातप के समाचार ज्ञात हुए। मार्ग में रिक्शा-दुर्घटना की स्थिति आयी, फिर भी उसकी परवाह किये विना उन्होंने अनवरत अपना विहार जारी रखा तथा पूज्य तपस्वीजी के चौथे मांगलिक उपवास के दिन तपोधनी की सेवा में, उनके सान्निध्य में पहुँच गयीं।

इन महासतियों ने जिस श्रद्धा, भक्ति, सद्भाव एवं आंतरिक लगन से पूज्य तपोनिधिजी की वैयावच्च सेवा की, वह सचमुच प्रशंसनीय है। ये महासतियाँ जैसी विद्या व्यासंगी एवं व्याख्यानी थीं,



बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री महामाया प्रसाद सिंह द्वारा तपस्वीजी को श्रद्धांजलि-अर्पण। श्री 'तरुण' जी मुख्यमंत्री को सलेखना व्रत की पृष्ठभूमि बता रहे हैं।

पूणभी के प्रमुख श्रावक श्री नरोत्तम दगरा कमानी आदि श्री अर्वति मुनिजी महाराज से विचार-विमर्श करते हुए।

वैसी ही सेवा एवं भक्ति की दिव्य भावनाओं से परिपूत भी। उनके पवित्र हृदय को यह धन्य एवं विरल प्रसंग पूर्णतः छू चुका था। श्रमण संघ के प्रथम प्रधानाचार्य पूज्य श्री १००८ श्री आत्मारामजी महाराज साहब के स्वर्गवास के प्रसंग में वे पंजाब नहीं पहुँच सकी थीं। उस दिव्य प्रसंग में अपनी अनुपस्थिति उनके हृदय को आज तक पीड़ा दे रही थी, किंतु वह मानसिक दुःख पूज्य तपोधनी महाराज की सेवा का लाभ मिलते ही बहुत हद तक विस्मृत हो गया था। इन सतियों ने मनसा, वचसा एवं कर्मणा अपना सद्भाग्य समझ कर इस महान तपो-यज्ञ में अनन्य सेवाएँ अर्पित कीं, साथ-ही-साथ अपने सुन्दर हृदयग्राही प्रवचनों से जनता को अपूर्व लाभ भी पहुँचाया।

बा० ब्र० विदुषी श्री ललिताबाई स्वामी ठा० ६ कलकत्ता-चतुर्मास में विराजित थीं। कलकत्ते से उग्रतम विहार करके पूज्यश्री के १७ वें उपवास ता० ८-१-६८, सोमवार को वे सकुशल उदयगिरि पधारीं। बालब्रह्मचारिणी सतियों ने जो अनवरत घोर विहार किया तथा मार्ग में आनेवाले सभी परिषहों एवं प्रतिकूलताओं का विचार किये बिना पूज्यश्री के चरणों में सत्वर पहुँचने की तीव्रतम मनोभावना से अद्भुत् साहस प्रदर्शित किया, वह नोंधपात्र (नोट करने योग्य) अविस्मरणीय प्रसंग है। पूज्य तपोमूर्त्ति योगीराज को बा० ब्र० सतियों के पधारने से बेहद आनन्द हुआ। यह मिलनसुख-मिश्रित दुःख से परिपूर्ण था। सबके नेत्र हर्षमिश्रित शोक से छलक आये थे। पूज्या महासतियाँ गुरुदेव के दर्शन से अपने-आपको कृत्य-कृत्य मान रही थीं, तो पूज्यश्री भी ऐसी श्रेष्ठ महासतियों के घोर विहार एवं पदार्पण को असाधारण महत्त्वपूर्ण मानते थे। महासतियों

के शुभागमन से उन्हें जो आनन्द हुआ, उनके पवित्र हृदय को जो शांति मिली तथा परस्पर सात्विकता एवं पवित्रता का जो वातावरण निष्पन्न हुआ, वे सब मात्र अनुभव के ही विषय हैं।

पूज्या महासतियों के पधारने से श्री जयंति मुनिजी का भार कुछ हलका हो गया। प्रवचन एवं स्वाध्याय-सम्बन्धी जिम्मेदारी कुछ कम हुई। फलतः पूज्यश्री की सेवा के लिए वे ज्यादा समय निकाल सके, जो तपोधनी के आंतरिक संतोष का उत्कृष्ट कारण बना।

जैन जनता से सर्वथा दूर ऐसी निर्जन वन-स्थली में कल्पनातीत रूप से चारों तीर्थ प्रचुर मात्रा में हाजिर हो गये, यह भी इस प्रसंग की एक विशिष्ट एवं आश्चर्यप्रेरक वास्तविकता है।

ता० १५-१-३८, शनिवार के दिन पहले के पंद्रह उपवासों में पंद्रह नये उपवास भी मिला लिये गये थे, और मासखमण की यह महातपश्चर्या भी श्रावक-श्राविकाओं के विशाल समुदाय तथा पूज्य साधुओं एवं साध्वियों की उपस्थिति में पूर्ण होने को आयी। मासखमण के उग्रतप का क्रमशः २६वाँ दिन आ पहुँचा।

पूज्य तपस्वीजी के प्राण अन्दर से अपने पंख फड़फड़ा रहे थे। २८वें उपवास की रात्रि जरा गंभीर रूप में व्यतीत हुई थी। उन्होंने २६वें उपवास के दिन यावज्जीवन संथारा (संलेखना) महातप व्रत रखने की इच्छा प्रदर्शित की। यों तो सामान्यतया मासखमण की तपश्चर्या के बीच ही उन्होंने जाहिर किया था कि "मेरा यह तप संथारे के लक्ष्य से है। कदाचित मासखमण के काल के बीच ही यदि कालधर्म हो जाए, तो भी संथारा ही समझना। कारण, यह मेरा दृढ़ संकल्प है।"

उनकी आत्मा शांत, दांत, गम्भीर एवं महान बन गयी थी। सारे भारतवर्ष में और भारतवर्ष के बाहर भी उनके महातप का मंगल प्रभाव फैल चुका था। उपस्थित जनता इस आश्चर्यकारक ऐतिहासिक एवं वास्तविक चैतन्यशील दृष्टान्त को देखकर विस्मय-विमुग्ध बनी हुई थी।

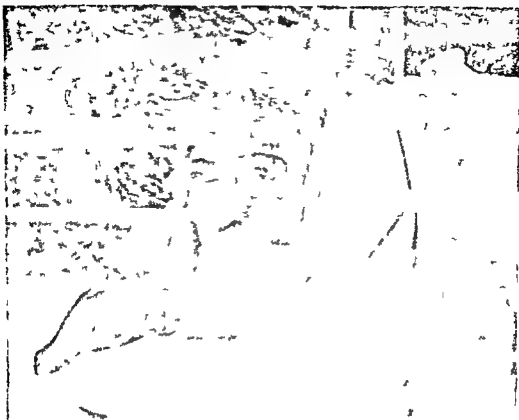
●●●

६

संलेखना : महातप से निर्वाण

पूज्य तपस्वीजी आज बड़े उमंग और आनन्दातिरेक में आ गये थे। अतिशय परामर्शानन्तर पार्श्ववर्ती मण्डली ने संथारा (संलेखना) पचक्खने का अनुमोदन कर दिया था। तपोधनी स्वयं वज्रसंकल्पी थे ही; अतः ता० २०-१-६८, शनिवार को दोपहर १२ बजे के बाद उनके द्वारा यावज्जीवन संथारा चलाने का निर्णय लिया गया। तपस्वीजी के संसारी पुत्र श्री बचु भाई (अमृतलाल भाई) भी उपस्थित थे। बारह बजे कुटीर में सभी अग्रगण्य श्रावक-समुदाय निर्णयानुसार यथासमय पहुँच गये थे। महासती श्री शांति देवीजी तथा बा० ब्र० श्री ललिताबाई स्वामी भी अपनी शिष्य-मण्डली-सहित पधार चुकी थीं। वातावरण में अद्भुत दिव्यता एवं प्रभुता व्याप्त थी।

पूज्य तपस्वीजी महाराज ने संलेखना (संथारा) के पचक्खाण के पूर्व ही पाट (चौकी) का त्याग कर दिया था। नीचे धरती पर घास का बिछौना बिछवाया गया था। इस बिछौने की लम्बाई-चौड़ाई ६×४ फीट थी। जब तक संथारा सीजा, तब तक पूज्य तपस्वीजी ने



पूज्य स्वामीजी दार्शनिक मुद्रा में।

इसी ६×४ फीट की मर्यादा में रहकर समययापन किया। उन्हें इस मर्यादा से जरा भी बाहर नहीं निकलना पड़ा।

पाट पर से जब धरती पर आसन बिछाया गया, तब सबकी आँखें प्रेम एवं विरह की संवेदना से रो उठीं। योगीराज की शय्या को धरती पर देखकर सबका हृदय द्रवित हो गया। उपस्थित सभी नर-नारी आश्चर्यमुग्ध एवं मौन थे।

मुनि श्री जयतिलालजी महाराज ने सबसे पहले संलेखना तप की व्याख्या की, तदनन्तर तपस्वीजी को संक्षिप्त आलोयणा करायी। उसके बाद द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव की संगति साधकर यावज्जीवन संथारा पचक्खाया।

जब पचक्खाण एवं आलोयणा-विधि चल रही थी, पूज्य तपस्वीजी एकाग्र हो गंभीरतापूर्वक सुन रहे थे और समझपूर्वक हाथ जोड़ते हुए प्रत्येक व्रत-भाव को स्वीकार करते जा रहे थे। जब यह कहा गया कि यह जीव अनादिकाल से संसार में भटक रहा है, घूम रहा है और असीम पुण्योदय के बाद ही ऐसा समाधि-मरण प्राप्त होता है, तब तपस्वीजी की आँखों में पश्चात्ताप के सिर्फ एक-एक आँसू ढुलक आये। सचमुच यह अमूल्यतम स्थिति थी। सारे मासखमण एवं संथारे के बीच पूज्य तपस्वीजी की आँखों के अश्रु-सजल होने का यही प्रथम एवं अंतिम प्रसंग था।

यावज्जीवन संथारा पचक्ख लेने के बाद वे एकदम निश्चिन्त हो गये थे। अत्यंत उत्कृष्ट वैराग्यभावनापूर्वक समस्त विकल्पजाल से परवर्ती होकर अपनी आत्मसाधना में संलग्न हो गये थे। उनकी आत्मा वर्धमान परिणामपूर्वक उत्कृष्ट समाधि में लीन थी। दर्शकों पर उनकी निर्लेपता एवं अखण्ड समाधि की गहरी छाप पड़ती जा रही थी।

मासखमण उग्रतप एवं संलेखना महातप में बहुत-से उपवासों के बाद शारीरिक निर्बलता होने पर भी वे तीन-तीन घंटे तक एक आसन के इसग्ग (ध्यान) में बैठ जाते थे। उस समय जरा भी शरीर-स्पर्श या वार्त्तालाप करना एकदम निषिद्ध था। संपूर्ण शांति बनाये रखने की कठोर सूचना रहती थी। एक बार तो एक अद्भुत प्रसंग आ घटा। घास का बिछौना जरा अव्यवस्थित हो गया था। व्यवस्थित करने के लिए हम लोग हमेशा नम्रतापूर्वक दबाव डालते रहे, परंतु वे सदा टालते रहे। सैंतीसवें उपवास के दिन किसीकी सहायता के बिना ही अपने-आप हनुमान की तरह छलांग मारकर बिछौने के प्रान्त भाग में पद्मासन लगाकर बैठ गये और कहने लगे, "अब बाद में कुछ भी परिवर्त्तन न करना पड़े, उसी ढंग से जो कुछ परिवर्त्तन करना हो सो कर लो, मैं पद्मासन में ध्यानस्थ बैठ जाता हूँ।" शांत योगमुद्रा में लगभग बीस मिनट तक योगीराज बैठे रह गये। उस समय उनकी निर्विकार योगमुद्रा देखने योग्य थी। जहाँ शरीर में इतनी अशक्ति थी कि वे अपने-आप करवट भी नहीं बदल सकते थे, वहाँ उनके इस अद्भुत् पराक्रम ने सबको दिग्मूढ एवं आश्चर्यमुग्ध बना दिया। हमें सुगमता हो गयी। चन्द मिनटों में ही हमलोगों ने बिछौने को सुव्यवस्थित कर दिया।

पचीसवें उपवास के बाद ही क्रमशः कफ का उपद्रव बढ़ता गया था। संथारे के प्रत्याखान के बाद तो कफ ने अपना विचित्र प्रभाव दिखाया। चालीसवें उपवास के बाद वह अन्दर समा गया। बाहर अपना असर दिखाना बन्द कर अन्दर के ही गढ़ को घेरने लगा। जब खांसी आती थी तो सारा शरीर हिल उठता था, परन्तु कभी वमन न होने दिया और मन की स्थिति को अविचलित रखा। इतनी विषम

मासखमण उग्रतप एवं संलेखना महातप में वहुत-से उपवासों के वाद शारीरिक निर्वलता होने पर भी वे तीन-तीन घंटे तक एक आसन के उसग्ग (ध्यान) में वैठ जाते थे। उस समय जरा भी शरीर-स्पर्श या वार्त्तालाप करना एकदम निषिद्ध था। संपूर्ण शांति वनाये रखने की कठोर सूचना रहती थी। एक वार तो एक अद्भुत प्रसंग आ घटा। घास का विछौना जरा अव्यवस्थित हो गया था। व्यवस्थित करने के लिए हम लोग हमेशा नम्रतापूर्वक दवाव डालते रहे, परंतु वे सदा टालते रहे। सैंतीसवें उपवास के दिन किसीकी सहायता के विना ही अपने-आप हनुमान की तरह छलांग मारकर विछौने के प्रान्त भाग में पद्मासन लगाकर वैठ गये और कहने लगे, "अव वाद में कुछ भी परिवर्त्तन न करना पड़े, उसी ढंग से जो कुछ परिवर्त्तन करना हो सो कर लो, मैं पद्मासन में ध्यानस्थ वैठ जाता हूँ।" शांत योगमुद्रा में लगभग वीस मिनट तक योगीराज वैठे रह गये। उस समय उनकी निर्विकार योगमुद्रा देखने योग्य थी। जहाँ शरीर में इतनी अशक्ति थी कि वे अपने-आप करवट भी नहीं वदल सकते थे, वहाँ उनके इस अद्भुत् पराक्रम ने सवको दिग्मूढ एवं आश्चर्यमुग्ध वना दिया। हमें सुगमता हो गयी। चन्द मिनटों में ही हमलोगों ने विछौने को सुव्यवस्थित कर दिया।

पचीसवें उपवास के वाद ही क्रमशः कफ का उपद्रव वढ़ता गया था। संथारे के प्रत्याखान के बाद तो कफ ने अपना विचित्र प्रभाव दिखाया। चालीसवें उपवास के वाद वह अन्दर समा गया। वाहर अपना असर दिखाना वन्द कर अन्दर के ही गढ़ को घेरने लगा। जब खांसी आती थी तो सारा शरीर हिल उठता था, परन्तु कभी वमन न होने दिया और मन की स्थिति को अविचलित रखा। इतनी विषम

परिस्थिति में भी उनके इस आश्चर्यकारक दृढ मनोबल एवं स्थिरता से सभी लोग प्रभावित थे।

एकतालीसवें उपवास के दिन दार्शनिक संत श्री विनोबा भावे का राजगृह में पदार्पण हुआ। वे सर्वप्रथम उदयगिरि की तलहटी में सीधे पूज्य तपस्वीजी के ही दर्शन के लिए पधारे। उन्होंने आते ही कहा, "हम राजगिर जाने के पहले सीधे यहाँ आये हैं। दूसरा सभी कार्यक्रम बाद में होगा।" ऐसा बोलते हुए उन्होंने पूज्य तपस्वीजी के चरणों में अपना सिर रख दिया। दोनों गद्-गद हो उठे थे। विनोबाजी ने बहुत शांत भाव से तपस्वीजी के इस महातप को श्रद्धांजलि अर्पित की। पूज्य तपस्वीजी से पानी चालू रखने का अत्याग्रह किया। बहुत सरलतापूर्वक फल का रस लेने की भी विनती की, परंतु श्री तपस्वीजी ने दृढता के साथ प्रेमपूर्वक कहा, "अब खाने-पीने की बात करने का समय निकल चुका है।" बाद में श्री विनोबाजी ने कुछ मिनट मौन रहकर श्रद्धा के भाव व्यक्त करते हुए वहाँ से प्रस्थान किया।

रात्रि में राष्ट्रीय नेता श्री जयप्रकाशजी सपत्नीक दर्शनार्थ आये। भाव एवं श्रद्धापूर्वक दर्शन-वन्दन किया। पूज्य तपस्वीजी के इस महातप के सम्बन्ध में संत कबीर के काव्य-वचन उद्धृत करते हुए अर्थपूर्ण शब्दों में बोले, "ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया—महात्मा कबीर के इस वाक्य को महात्माजी ने अक्षरश सार्थक किया है। सचमुच ईश्वर के घर से प्राप्त शरीर को वैसे-का-वैसा ही पुन प्रभु के सामने जाकर निर्भयता-पूर्वक सौंप दिया।" श्री जयप्रकाश बाबू ने योग्य शब्दों में ही अपने हृदय के सद्भाव व्यक्त किये थे। सचमुच ही कबीर के इस भजन को तपस्वीजी ने सोलहों आने अपने में लाग कर जगत के समक्ष मृत्युञ्जय बनने का आदर्श पाठ रख दिया।

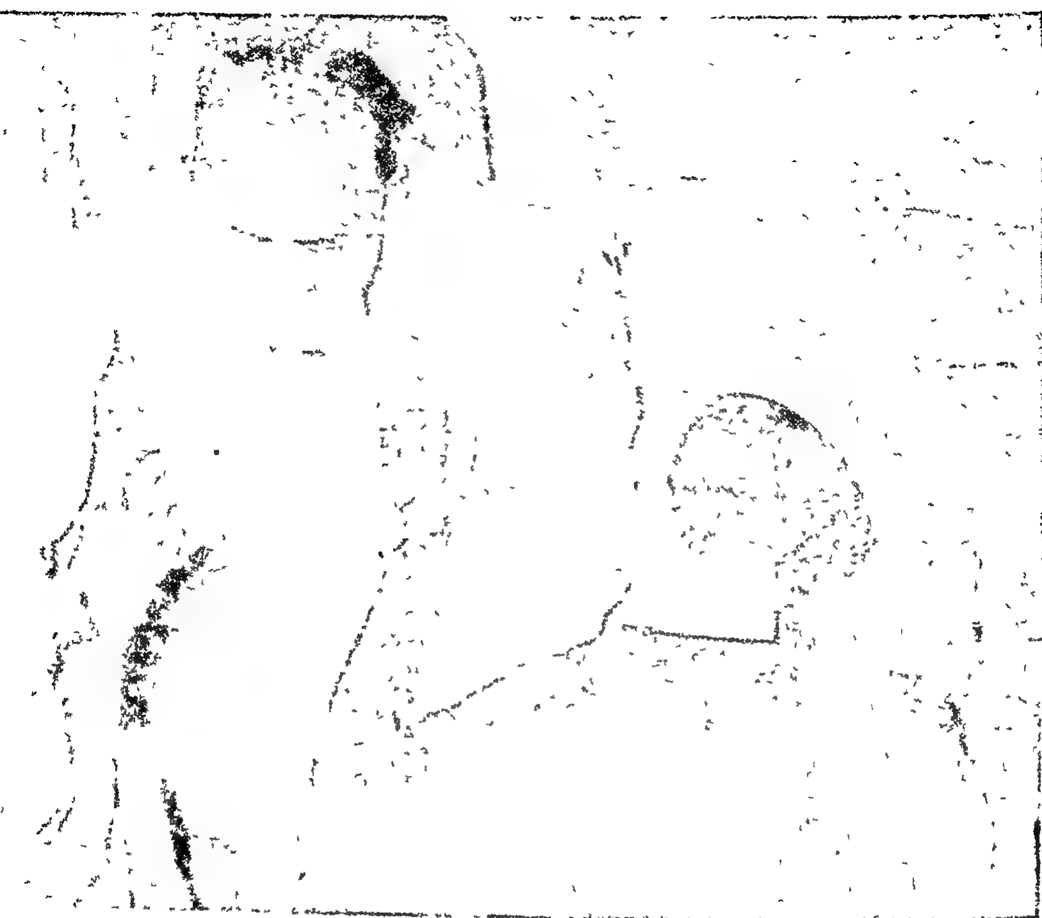
३७वें उपवास की रात्रि जरा गंभीरतापूर्वक व्यतीत हुई, किंतु ३८वें उपवास की सम्पूर्ण समाधि ने रात्रि की चिन्ता की इतिश्री कर दी। कमजोरी प्रतिक्षण वर्धमान थी। वाणी मन्द-से-मन्दतर होती जा रही थी, परन्तु आंखों की चमक जैसी-की-तैसी ही थी। रात्रि में जब वे आंखें खोलते तो नेत्र-बिम्ब हीरे की तरह चमकते थे। कान की तीव्रता बढ़ रही थी। सामान्य व्यक्ति से उनके शरीर में एकदम भिन्न एवं विपरीत प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा था। (साधारणतः शारीरिक शक्तियाँ जैसे-जैसे कमजोर बनती जाती हैं, वैसे-वैसे ऐन्द्रियिक शक्तियाँ भी दुर्बल होती जाती हैं; परन्तु यहाँ शरीर की दुर्बलता वर्धमान थी मगर ऐन्द्रियिक शक्तियाँ सतेज होती जा रही थीं।) ४२वाँ उपवास पूर्ण हुआ तो वे संपूर्णतः स्थिर-से हो गये, अपने में समा-से गये।

किसीसे बातचीत करना या किसी का व्यावहारिक परिचय उन्हें जरा भी रुचिकर नहीं था। संथारे के बाद वे हरएक व्यवहार का निषेध ही करते रहे थे, परन्तु अब तो पूर्णविराम हो गया था। "मौन रहो, शान्त रहो"—जब-तब यही आदेश देते रहे। अपनी ध्यान-समाधि में वे सभी विकल्पों से सर्वथा दूर हो रमण कर रहे थे।

अन्तिम चार दिनों तक तो उन्हें शरीर और पुद्गलों से भिन्न आत्मज्ञान की समाधि लग चुकी थी। दर्शन करनेवालों के हृदय में इस दिव्यता का संस्पर्श होता रहता था। ४२वें उपवास की ही रात को तीन बजे श्री जयंति मुनि की हथेली में लिखकर सूचना दी—"हवे मने असातानो उदय थशे परन्तु गबराशो नहिं।" उनकी यह सूचना उचित समय पर थी। पिछले दो दिनों के अनुभव ने हमें इस सत्य का साक्षात्कार करा दिया था। यद्यपि उस वक्त सेवा करने-



श्री जयंति मुनिजी महाराज साधना-कुटीर में आचार्य विनोबा को तपस्वीजी के साधनामय जीवन-परिचय कराते हुए। साथ हैं—तपस्वीजी के प्रियपात्र पंडित रोशनलालजी तथा पीछे श्री 'तरुण' जी।



वालों के हृदय को आघात पहुँचा था, परन्तु उनकी विचक्षणता का भी उनको यथार्थ आभास था।

अन्तिम दो दिनों तक छोटी-बड़ी कितनी ही असाता की परम्परा खड़ी हुई। कान की बगल में शूल निकलने लगे। पेट में उपवास की गर्मी रहने एवं चर्बी सूख जाने से हरस (अर्श बवासीर) की तकलीफ उठ खड़ी हुई।

जीभ पर छाले पड़ गये थी। पानी गले से नीचे उतरता नहीं था। वेदना असह्य थी। संलेखना के प्रारम्भ में ही अपनी व्याधि के सम्बन्ध में न उल्लेख कर चुके थे, अत हम यत्किञ्चित् जागरूक भी थे। उन्होंने कहा था, "मने मारणातिकव्याधि आवशे, आयुष्यनु बल प्रबल छे एटले शरीर पर पोतानो प्रभाव देखाडशे।" हरस की भयकर पीड़ा से हमारे हृदय को संवेदना होने लगी। हमारी इस दुविधा को वे अपनी विचक्षणता से समझ चुके थे, अत उन्होंने लिखकर दिया, "मारे असातानो उदय होय त्या तमारो शो इलाज।"

इतना सब कुछ होने पर भी पूज्य तपस्वीजी मन से पूर्ण स्वस्थ एव स्थिर थे। ४३ वां उपवास व्यतीत हो गया। ४३ वीं रात्रि भी ज्यों-त्यों व्यतीत हो गयी। इन दिनों तो वे पानी ले नहीं सकते थे। फलत ४४ वें उपवास में हरस की व्याधि ने उग्र रूप धारण किया। उपवास की यह रात्रि कठोरतम बन गयी थी। सचमुच ही देह एव प्राण को अलग करनेवाली यह अन्तिम रात्रि थी।

ज्यों-ज्यों दिन बीतने जाते, तपस्वीजी की आत्मा सावधान होती जाती थी। उनकी वर्तमान व्याधि ने हमारे हृदय को व्यथित बना दिया था। हमारा आक्रन्दन उन्हें पसंद न पड़ा। शांति एव धैर्य रखने की

पुनः-पुनः हिदायत वे करते रहे। इधर रात्रि में वेदना प्रचण्ड रूप धारण कर लेतीं। जैसे-जैसे व्याधि वढ़ती गयी, वे उसका डटकर मुकाबला करने में मानसिक दृष्टि से समर्थ होते गये। ४२वें उपवास में ही अपने अशुभकर्मों को चुनौती देते हुए कहा था, "तारे जेटलो प्रभाव देखाड़वो होय तेटलो देखाड़ी देजे हुं अविशम भावे आमोरचे खड़ो छु।" अंतिम कुछ दिनों में वे कभी हिन्दी तो कभी गुजराती बोलते रहे, परंतु उनकी दृढ़ता के अन्तिम दर्शन ४४ वें उपवास की रात्रि में ही हम कर सके।

४४वें उपवास के दिन महाराजश्री के दर्शनार्थ विहार के नेताओं में अद्भुत उत्साह आ गया था। जिन नेताओं ने उस दिन महाराजश्री के दर्शन का लाभ लिया, उनमें विहार प्रदेश कांग्रेस कमिटी के अध्यक्ष पं० राजेन्द्र मिश्र, विहार कांग्रेस विधायक दल के नेता श्री महेश प्रसाद सिंह, विहार विधान सभा के अध्यक्ष श्री धनिकलाल मंडल, भू० पू० उप-मुख्यमंत्री श्री कर्पूरी ठाकुर, भू० पू० पुलिस मंत्री पं० रामानन्द तिवारी, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष श्री प्रणव कुमार चटर्जी एवं पत्रकारप्रवर श्री जितेन्द्र सिंह के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

अंतिम रात्रि की मारणांतिक व्याधि ने हमें हतोत्साहित वना दिया था। हम हिम्मत हार चुके थे। उन्होंने हमें हिम्मत देने के लिए वहुत-से इशारे करके समझाने का प्रयत्न किया, परन्तु उनके मनोगत भाव उनके इशारों से हम भाँप न सके। फलतः मृत्यु के ६ घंटे पूर्व प्रातः ४ बजे वड़े कष्ट से हाथ में कापी और पेन्सिल लेकर टेढेमेढे अक्षरों में, किसी तरह अंधेरे में ही, उन्होंने लिखा—"दुःख ते कर्मनो उदय छे, अनुकूलता नथी तेमां तमारो दोष नथी।"

तपस्वीजी के दर्शनोपरांत बिहार विधायक कांग्रेस-दल के नेता श्री महेश प्रसाद सिंह बाहर निकलते हुए। उनके बाएँ हैं, श्री 'तरुण' जी तथा दाएँ सौराष्ट्र के सुप्रसिद्ध कलाशिल्पी श्री चन्दु लाल पी० त्रिवेदी, श्री जयंतिलाल जैन एवं श्री रतिलाल भाई आदि।

तपस्वीजी महाराज की वन्दना करते हुए श्री [illegible] जैन।

इन शब्दों को लिखकर तो पूज्यश्री ने कमाल ही कर दिया। हम अपनी मूर्खता पर शर्मिंदा हुए। साता पहुँचाने की हार्दिक भावना होते हुए भी हमारी नासमझी के कारण उन्हें हमसे असाता हो जाती थी—यही हमारी मानसिक वेदना थी, जिसे समझकर वे हमें क्षम्य बना चुके थे। उन्होंने हमारी कमजोरी को कृतार्थता के रूप में परिणत कर डालने का यह भगीरथ प्रयत्न किया था। यही कारण है कि वह पेन्सिल तथा वे टेढ़े-तिरछे शब्द उनकी अन्य स्मारक-सामग्री के साथ कलकत्ता में प्रदर्शनार्थ रखे गये हैं। उनकी अपनी आत्मसमाधि भी स्थिरता की पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी, क्योंकि उन्होंने इशारे एवं मुख-भंगिमाओं से हमें सूचना दे दी—"मैंने सायकाल से ही पानी का त्याग कर चौविहार कर लिया है।"

हे मृत्युञ्जयी! जीवन-मरण के अन्तिम युद्ध का आपका यह पराक्रम अपूर्व था। ४० उपवास तक क्षुधा के साथ समभावपूर्वक टक्कर लेकर अंतिम दो दिनों की महावेदना को भी शान्ति-समाधि के साथ झेल लिया। सचमुच आप धन्य-धन्य बन गये।

अब पूज्य तपस्वीजी के समक्ष इस नश्वर देह का त्याग करने के लिए मात्र ४-६ घंटे ही शेष रहे थे। उनके इस महातप की पूर्णाहुति क्रमशः समीप आ रही थी। इतनी बड़ी उम्र में इतना घोर महातप—जिसमें डेढ़ मासखमण सहा गया था—चरमान्त को स्पर्श कर रहा था। वे समुद्र को तैर चुके थे, किनारे आ लगे थे, कोटि-कोटि कर्मों की निर्जरा कर संसार को परित्त कर, वे आराधनाकारी बनने जा रहे थे।

रात्रि के चार बजने के पश्चात् उनकी असाता शान्त होती जा रही थी। शरीर के अवयव स्थिर हो गये थे, परन्तु चेतना ज्यों-की-त्यों बनी रही। प्रभो! यह दिव्य एवं पवित्र आत्मा कसौटी पर कसे

जाने के वाद सच्चा सोना सिद्ध हो कर हीरे की तरह चमक रहा था। जैन शासन का डंका वज रहा था। महाराजश्री महाज्योति में मिलने की तैयारी पूरी कर चुके थे।

प्रातःकाल हुआ। शरीर निर्वल एवं कोमल वनता जा रहा था। प्रतिक्षण हिलने-डुलने से शरीर का जतन करना पड़ता था। परंतु आठ बजते ही वे लगभग एकासन में स्थिर हो गये। पाठकवृन्द ! पूज्य योगीराज की अन्तिम घड़ियाँ कितनी निर्मल थीं, उन्होंने किस शैलेशी अवस्था में देह-त्याग किया, इसका सामान्य चित्र आगे की पंक्तियों में दिया जाता है।

श्री तपस्वीजी का मस्तक एकदम उच्चासन पर था। पैर घुटने से झुके हुए खड़े थे। संथारे के विछौने के मध्यभाग में वे स्वतः व्यवस्थित टिक गये थे। श्री जयंति मुनि के पास ही, लगभग उनकी गोद में वे थे। पंडित रोशनलालजी तथा निरंजन देवजी चरणों के समीप ही बैठे हुए थे। श्री वचुभाई भी आ गये थे। बा० ब्र० श्री ललितावाई स्वामी अन्त तक लोगस्स का पाठ करती रहीं। तीर्थंकर प्रभु की स्तुति के इस महाप्रसंग में पूज्य तपस्वीजी के हाथ स्वतः जुड़े गये थे। जैसे-जैसे लोगस्स-पाठ का उच्चारण होता जा रहा था, उनके श्वासोच्छ्वास की गति मंद पड़ती जा रही थी। नाड़ियाँ सूक्ष्मातिसूक्ष्म होकर गुम हो रही थीं। प्राण, अव शरीर का सम्बन्ध हमेशा के लिए छोड़कर जाने की तैयारी में थे। सभी उनके निर्वाण के अंतिम क्षणों में होनेवाली हलचल को आतुरतापूर्वक देख रहे थे। "योगिनः गुप्त मृत्यवः" के अनुसार ही उनके ये अंतिम क्षण हमारी संपूर्ण सजगता के वावजूद हमें ठगना चाहते थे।

तपस्वीजी के दर्शनोपरान्त साधना-कुटीर से निकलते हुए आचार्य विनोबा भावे।
उनके दाएँ चलते हुए श्री 'तरुण' जी।

भावुक-समुदाय का एक दृश्य

देखनेवालों की कल्पना थी कि जब प्राण उड़ेंगे तब आँखें फड़केंगी, शरीर की नाड़ियाँ खिंचने लगेंगी, हिचकियाँ आएँगी, परंतु उपर्युक्त क्रियाओं में से एक भी क्रिया न हुई। न आँखें फड़कीं, न नाड़ियाँ खिचीं और न ज़रा-सी हिचकी ही आयी। धीमे-धीमे १० बजकर २० मिनट पर उनके प्राण स्थिर हो गये। आज ४५ वाँ दिन था। माघ शुक्ला सप्तमी, सोमवार का भव्य दिन एवं शुभ चौघड़िया वर्त रहा था। सातम और सोमवार का सुभग योग था। आर्य सुधर्मा स्वामी के निर्वाण का पवित्र दिन। बस, इसी धन्य दिन को इन धन्य तपस्वी योगीराज ने महातप से विशुद्ध-निर्मल देह का परित्याग कर दिया।

किसी को भी पता नहीं चल पाया कि वे कब और कैसे चल बसे? सबने ध्यान-केन्द्र को उन्होंने भूल-भुलैया में डाल दिया। कोई भी कुछ समझ न पाया। निरीक्षण-परीक्षण का जो सबको अभिमान था, वह धूलि-धूसरित हो गया। सबकी दृष्टि से ओझल रह गुप्त भाव से वे परम शुचि अवस्था में पहुँच गये थे। थोड़े समय तक गंभीर निरीक्षण-परीक्षण हो चुकने के बाद १०बजकर ४५ मिनट पर उनका निर्वाण घोषित कर दिया गया।

●●●

७

श्री जगजीवन-वचनामृत

पूज्य तपस्वीजी जब-जब ध्यान एवं समाधि से बाहर आते, तब-तब अपनी अन्त प्रेरणा से अनेक सुभाषित उनके श्रीमुख से प्रकट होते। उन्हीं सुभाषितों का, उन्हींके शब्दों एवं भाषा में, यह संक्षिप्त संग्रह है। हमारे प्रमाद के कारण अठाइसवें उपवास के पूर्व के उनके आध्यात्मिक वचनामृत संगृहीत न हो सके, एतदर्थ हम क्षमाप्रार्थी हैं। इन सुभाषितों में हम विशुद्ध शुक्ल ध्यानपरायण एवं साधक आत्मा की निर्मलता और उत्क्रान्ति का पग-पग पर अनुभव किये बिना नहीं रहते।

ता० १९-१-६८, शुक्रवार : २८ वाँ उपवास

१. राग, द्वेषना परिणाम मूलथीज बली जाओ।

२. आत्मा परम निर्मल थइ संचरे।

३ जो के बधा अध्यवसायो थी हुं जुदोज छुं अध्यवसायोने मारा थी जुदोज मानुं छुं, छतां अध्यवसायो पण बन्ध पड़ो।

४. आयुष्य कर्मनो जे बन्ध पड्यो होय अथवा पड़वानो होय त्यां निश्चित आत्मा जवानो छे, तेनो मारा मने कशोज भय नथी।

५. मारा उपर शुभ परमाणुओनी वृष्टि थइ रही छे, बधुं शान्त थइ जाय।

६ बोलता बन्ध थाओ। जे छे ते ज छे।

७ सिद्धो जेम अनन्त-अनन्त सुखनी लहेर मा विराजी रह्या छे तेम आ आत्मा पण सिद्धस्वरूप छ, एटले एने सुखनो अनुभव केम न थाय ?

ता० २०-१-६८ वॉं, शनिवार २६ वाँ उपवास

१ आ जगल मां श्रावकोए जे सेवा आपी त अद्भुत कहेवाय, एटले कोइ पण जातनी त्रुटीओ काढी उपालम्भ आपशो नहिं।

२ मारी पाछल कोइ पण जातनो व्यामोह राखशो नहिं।

३ मोटा-मोटा मांधाताओनी पण विश्वमा हस्ती भुसाइ जाय छे। महात्मा गाधी जेवा महारथी जेणे आखी राजनीति अहिंसक रीते फेरवी नाखी तेमने पण माणसो भूलवा तैयार छे तो पछी आपणी तो वातज क्यां ?

४ महावीर स्वामी जेवा महान् तीर्थंकरना जीवननी पण अखण्ड कडीओ मलती नथी तो पछी आपणा जेवा सामान्य जीवन वाला माटे जरा पण व्यामोह राखवो उचित नथी।

५ आ ससारज ज्यारे मिथ्या छे त्यारे तो एमा व्यामोह राखवो व धारे मिथ्या छे।

ता० २२-१-६८, सोमवार ३१ वाँ उपवास

पूज्य महाराजश्री की अतरग सेवा मे लगे हुए सेवको ने सिर में चन्दन का तल घिसने की प्रार्थना की, तो उसके उत्तर में पूज्यश्री ने फरमाया —

मारा अन्तरमां चन्दन ना फुवारा छूटी रह्या छे तो पछी आ चन्दननी शी असर ?

ता० २३-१-६८, मंगलवार : ३२ वाँ उपवास

१. हालो हालो हल्लानी हवे मारो दीपक बुझाय छे।
जिन दर्शन ना अभिलाषी अमारा अन्तर उभराय छे॥

२. आ झाडवुं छे। वगर पाणीए आपणे फल (मोक्षगतिरूप) खावुं छे।

उसी दिन धनवाद के एक जैनेतर सदगृस्थ पूज्य महाराजश्री के दर्शनार्थ आये थे। उन्हें देखते ही महाराजश्री के मुखकमल-से निम्न शब्द निकल पड़े—

३. केटलाक लक्ष्मीना दास छे तो केटलाक लक्ष्मी ने पण दासी बनावनार पुरुषो जोवा मां आवे छे। एवा पुरुषो आजे पण चौथा आरानी माफक नजरे देखाय छे।

४. अवसर चुक्यो मेहुलो।

ता० २४-१-६८, बुधवार, रात के ३ बजे : ३३ वाँ उपवास

बहु खासी आवे एटले एम नथी मानवानु के हुं दुःखी थइ रह्यो छुं। खोराक वगरना शरीरने केम पार पाडवुं तेनी फिकरतो कुदरतने छे अने तेथी एक पछी एक छोड़वानी क्रिया थाय छे। छींक एक अटकी रही छे। ते आवती नथी पण आवशे त्यारे नश ने तोड़ीने आवशे। तेनी क्रियाना भासमां पूज्य महाराजश्रीने अकलामण देखाय छे पण महाराजश्री कहे छे केमने तेनुं एक अंश मात्र दुःख नथी, अने जो साधारण थतुं होय तो मानतो नथी।

मारा आत्मामां कोई बात, वस्तु, विकल्प के विचार नथी, अखंड आत्मानुं ध्यान छे। आत्मा निर्मल बनावी दीधेल छे। क्रोध, मान, मायामां आत्मा निर्बल केम न बने? अर्थात् बनेज। परन्तु सिद्धस्वरूपी

आत्मा तेज परमात्मा छे, एज मारु सिद्ध स्वरूप छे। हुं कई मोटो ज्ञानी नथी।

प्रश्नः आपे कहेल के मारा अन्तरमा चन्दनना फुवारा उडे छे, तेनो अर्थ शो ?

उत्तर मने मनमा हतुं कहेल, तेनी व्याख्या करवा जेटलो हु ज्ञानी नथी।

प्रश्न: जेने तमे परमात्मानी दया कहो छो ते केवा छे ? अने क्या छे ?

उत्तर तनी व्याख्या करवानी दरकार नथी। तेतो अनुभव अने प्रयोग पछी ज साक्षात् समजाय छे केने केवा छे ने शु छे ?

दोपहर दिन १२ बजे

१ आपणे वराज राजना रमकड़ा छीए। तो पछी मारुं शुं ?

२ कीर्त्ति महान् भयकर छे।

३ जीवन धन्य वनावजो, पवित्र वनावजो।

४ आपणे कीर्त्तिना पूतला ? ना ना आपणे रागना रमकड़ा छीए। शु माट जवाना छीए। आपणी कीर्त्ति-प्रशंसा करी कीर्त्ति करनार आपणा चारित्रनो भग करवा वाला छे। भगकरीने फुकाइ जवा वाला छे। एनी करेली कीर्ति आपणे शुं कामनी ?

५ अत्यारे श्रावक, श्राविका तथा साधु-साध्वीजी मेरुनी टोच उपर उभा छे, भगवानना दरवाजा पासे छे। अरिहत केवली सिवाय एनाथी ऊचु वीजु कोई स्थान नथी।

६. हृदय ना भक्तिना सूरो ज्यारे वाजिंत्रमां जोड़ायछे त्यारे तेनी कीमत रहेती नथी। कारण के गानारनी पवित्रता अने शूरना भक्तिमां थी छूटी कीर्तिनां अने समाजना मनोरंजनमां चाली जाय छे।

अपराह्न ३ बजे

७. दर्शन करनारा बधाना हृदयमांपण, "निज अन्तर केवल ज्ञान विधान जो" एटले बधाना अंतरमां केवल भर्युं छे। दर्शन आवनारना आत्मा अने हैयामां पण (ज्यारे केवल भर्युं होय त्यारे श्रद्धा-भक्ति केमन होय ?

रात १ बजे

८. हे परमात्मा ! हुं तो छद्मस्थ छुं। में अनशन व्रततो कर्युं अने मारा देहनी पीड़ाने सहन करवा पण हुं समर्थ थयो छतां हे प्रभु ! आज तेंतीसमां उपवासे तारी अत्यन्त कृपाथी मारा आत्मामां अने शरीरमां अंशमात्र कोई जातनी तकलीफ नथी। अत्यार सुधी मारा अनशन ना ध्येयमां खूब स्थिर छुं। लक्ष्य जरापण बदल्युं नथी। हे प्रभु ! ए एकदम आपना उपकारनो प्रताप छे, अने टेठ सुधी आवीज अविचल श्रद्धा रहेशे, एवो मारो विश्वास छे, आ मारो अहंभाव नथी, परन्तु अन्तरनो शुद्ध भाव छे तेना वड़े हुं बोलुं छुं।

तपस्या के ३३ वें उपवास के शुभ दिन अ० सौ० बहिन श्री समरथ बहिन तथा उनके भर्ता श्रीमान् नारायण दास भाई ने चतुर्थ व्रत (ब्रह्मचर्य) स्वीकार किया। पूज्य महाराजश्री ने अपने श्रीमुख से प्रत्याख्यान कराये।

ता० २५-१-६८, गुरुवार ' ३४ वाँ उपवास

१ सत्य ए सत्य ज छे। सोनानी ज कसौटी होय छे। सत्य एक रत्नचिन्तामणि समान सम्पूर्ण प्रकाश आपनार छे। एक पैसा सत्य थी माडीने सोलआना प्रमाणे प्रकाश आपी रहेल छे। ते सत्य आत्मा मा प्रभुता पणे रह्यु छे। जेटला अंगे सत्य तेटली आत्मा मा प्रभुता। एम जो सोलआना सत्य परिणमे तो आत्मा पूर्ण प्रकाशमान् थाय कारण 'सच्च खु भगव' सत्य आत्मा पोते प्रभु छे, सिद्ध छे। सत्य ए एक अलौकिक चीज छे।

दोपहर दिन १ बजे

आयुष्य कर्मनो बन्ध जोरदार होवाथी ते देह क्रिया उपर भागे पावर वापरी रहल छे, परन्तु तेम छता अन्तिम पीडा माहेलु कंइ जणातु नथी। मारो आत्मा परम शान्ति मा पोताना ध्यानमा आनन्दनो अनुभव करी रह्यो छे।

मारी समजण मा भूल होय के केम ? पण हे परमात्मा ! आपने स्पर्शेला शुद्ध परमाणुओनी वृष्टि थइ रही होय, तेम मने जणाय छे।

रात ८-१५ बजे

श्रीमान दुर्लभजी भाई वीराणी को लक्ष्य करके कहा—

"मांदा माणस पासे खबर काढवा आव्या होय एम चिन्तवशो नहिं। कारण के हु एम नथी (मारी स्थिति एवी नथी) हु खूब ज आनन्द मा छु। तमारा जेवो ज मने आनंद थइ रह्यो छे। मारा विषे चिंता

करशो नहिं अने बीजु कंइ चिन्तवशो नहिं, तमोने बधा ने जोइ ने मारो आत्मा बहुज खुशी थायछे। हजु तो ३४ मो उपवास छे। साता बहुज सारी छे।

प्रश्न : तमोने शुं देखाय छे ?

उत्तर : कंइ नहीं, शान्ति ॐ शान्ति, निर्विकल्प अवस्था। जेवो अवाज बन्द थाय छे तेवी ज समाधि शरु थायछे।

प्रश्न : कंइ देखातुं नथी तो पछी विश्वास शेनो छे ?

उत्तर : सोऽहंम् , शुद्ध, सिद्ध स्वरूप आत्मा तेनो विश्वास छे, तेनी सहायता, तेनुं वल मने भली रहे छे।

प्रश्न : तो पछी तमोने कंइ केम बतावतो नथी ?

उत्तर : मारी कंइ इच्छा ज नथी। इच्छा होय तो पण हुं नहिं कहुं के मारु मौत बतावी जा पण मारी इच्छा ज नथी। आयुष्य कर्म उपर मारो दृढ विश्वास छे पछी जाणवानी शी जरुर छे। मारी भविष्यनी गति पण जाणवानी इच्छा नथी। इच्छा थती ज नथी।

प्रश्न : तो पछी बीजाने केम इच्छा थाय छे ?

उत्तर : तेनो ते जाणे मारे शुं ?

प्रश्न : देवलोकमाँ गया पछी शासननी सेवा मां कंइ मदद करशो के नहिं ?

उत्तर : एवो सवाल पूछाय ज नहिं ।

प्रश्न : असाता के अकलामण तो नथी थती न ?

उत्तर : मारा ब्रह्मानन्द नी आगल आबधुं अंश मात्र पण नथी।

प्रश्न : एतो तपस्वी माटे होइ शके पण साधारण माटे शु होइ शके ?

उत्तर : हु एटलो वधो ज्ञानी नथी।

ता २७-१-६८, शनिवार, प्रात ६ बजे ३६वाँ उपवास

आजनी रात्रि घणी शान्त निद्रामा गइ। जागतो हतो त्यारे पण एम न्होतु लागतु के हु उपवासी छु। खूब शान्ति लागती हती। बेठो हतो त्यारे पण खूब आराम हतु। मारा मा कंइ चमत्कारिक घटना नथी माटे कोइ अन्धविश्वासी न बनवु।

प्रात १०-३० बजे

महा रमतियाल प्रभो। मने निमित्तना घोडे चढावी दीधो छे। ठीक जेवी तारी इच्छा। मने तारा उपर विश्वास छे। जरुर पार उतारीश।

ता २८-१-६८ रविवार, प्रातः ६ बजे : ३७वाँ उपवास

आज पंडित रोशनलालजी ने पूज्य महाराजश्री के सम्बन्ध मे एक कविता बनायी थी। उसे वे सुनाने की आज्ञा चाहते थे, उसके उत्तर में पूज्य महाराजश्री ने फरमाया—

"हजी कसौटी मोटी छे। कसौटी थी पार उतरी गया पछी ज आवी रचना (जे कविता बनावी त) शोभे। हु कसौटीमा उभो छु। कसौटी माटेनी लड़ाइ मा उभो छु। पण मने जरा पण भय नथी। जे शरीर ने मारे छोड़वु छे ते उल्टी शक्ति बतावी रह्या छे। एम मने लागी रह्या छे।

रात १०-१५ बजे

मारो दृढ निर्णय अने संकल्प पूरो करवा तारी सामे मैदान मां खड़ो छुं हुं दुःख के भय पामतो नथी।

ता० २६-१६-८, सोमवार : ३८वाँ उपवास

श्वासनो अवाज गाजे छे, पण मने तेनी पीड़ा नथी। शक्तिनुं जोर घणुं ज छे परन्तु कोइने मुंजावानुं नथी।

ता० १-२-६८, गुरुवार, ४१ वाँ उपवास

हे परमेष्ठि! तमारामां ज मारुं ध्यान स्थिर छे। वाकी वधुं निमित्त छे अने ते चाल्याज करे छे।

+ + + +

४१ वें उपवास के शुभ दिन प्रात लगभग साढे ग्यारह बजे आचार्य श्री विनोबा भावे पूज्य महाराजश्री के पास उदयगिरि की तलहटी में पधारे। श्रद्धापूर्वक वन्दन करके परस्पर प्रेमपूर्वक विचार-विनिमय किया, तनदन्तर अपनी शुभकामनाएँ इस रूप में प्रेपित कीं—

"मुनि श्री जगजीवनजी महाराज शुक्ल ध्यानपरायण होकर विश्वसंगल के लिए जो तप कर रहे हैं, उसके लिए वावा की शुभ-कामना।"

तपस्या का ४१ वाँ दिन
महासुद ३

विनोबा का जय जगत्
ता० १-२-६७

ता० ४-२-६८, रविवार, ४४ वाँ उपवास

४४ वे उपवास की सारी रात्रि मारणातिक पीडा मे व्यतीत हुई थी। उनकी यह असह्य पीडा, सेवा में लगे हुए हमलोगो से देखी न जा सकी। हम सब विह्वल हो गये। पूज्य महाराजश्री हमारी मनो-व्यथा भाँप गये। बडे कष्ट से हाथ मे कॉपी एवं पेन्सिल लेकर अक्षरों के ऊपर अक्षर लिखकर हमें भयमुक्त बनाया। उनके हाथ के वे अस्पष्ट अक्षर, पेन्सिल एव कॉपी आज भी सुरक्षित रखी हुई है। निर्वाणप्राप्ति के ६ घट पूर्व ही यह लेखन-कार्य सम्पन्न हुआ था। निर्वाणप्राप्ति का समय ४५ वें उपवास के दिन प्रात १०-२० बजे है, जबकि ४४ वें उपवास की रात्रि के अन्त मे अथवा ४५ वे उपवास की रात्रि के प्रारभ मे प्रात चार बजे उन्होने अपने हाथों से लिखा—

'दु खते कर्मनो उदय छे, अनुकूलता नथी, तमारो कोई दोप नथी।'

• • •

८

पुत्रियों को अन्तिम संदेश

पूज्यश्री ने ता० २२-१-६८, सोमवार को ३१ वें उपवास के दिन मुख्यतः अपनी साध्वी पुत्रियों—वा० ब्र० श्री प्रभाबाई एवं वा० ब्र० श्री जयाबाई—तथा अन्य समस्त साधु-साध्वियों को भी दृष्टि में रखते हुए, अपने ही शुभ हस्ताक्षरों में, अपना जो अंतिम संदेश राजकोट भेजा था, वह नीचे अक्षरशः उद्धृत किया जाता है—

"परमपवित्र महान् सती-साध्वीजी ओ जे परमकृपालु परमात्मा ने पण प्रिय एवा महासतीजी वा० ब्र० श्री प्रभाबाई स्वामी, वा० ब्र० श्री चंपाबाई तथा वा० ब्र० श्री जयाबाई स्वामी आदि तमाम महासती जीओने तथा वर्तमान मां राजकोट मां विराजता पूज्य साधु तथा सती-साध्वीजीओने आजे मारा ३१ मां उपवासना दिवसे संलेखना व्रत मां सवारना, दस वाग्ये शुद्ध अन्तःकरण थी बधा ने याद करीने प्रेमपूर्वक हार्दिक क्षमत्क्षमापना करीने।लखुं छुं के मारा संथारामां पूर्ण रीते राग-द्वेपना मूल हजु नाबूद थया होय तेवो संतोष थयो नथी। माटे आपणा राग-द्वेपना मूलिया काढ़वा माटे समय-समय नी जागृति राखी मारा करतां पण उच्च श्रेणीए जवानी भावना राखजो। क्रिया कदाच ओछी पले तो पण ते करता आ राग-द्वेषना मूलियाने मूलथी अटकाववा

तपोधनीजी उपवास के ३१ वें दिन अपनी पुत्रियों का अन्तिम संदेश लिखते हुए।

तपस्वीजी की सेवा में रत श्री जयंति मुनिजी महाराज।

तीव्र-तम जागृति राखशो । कारण त महान् हानिरूप छे । तेमा पण साधु-साध्वीना सत्सगमा कदीपण राग-द्वेष प्रवेशवा देशो नहिं । आपणे हजु छद्मस्थ छीए, एटले व्याहमोह अवश्य थाय, तेने अटकाववा खास काळजी राखवी । खरेखर मानजो के आपणे जे मोक्षमार्गना ध्येये चारित्र लीधु छे अने आपणो आत्मा सातमा गुणस्थानने स्पर्शो छे, त तमाम पुरुषार्थ आ रागद्वेषथी नकामो थशे । माटे बा० ब्र० श्री प्रभाबाई, बा० ब्र० श्री चम्पाबाई तथा बा० ब्र० श्री जयाबाई स्वामी आदि साधु-साध्वीजीओने आ मारो अन्तिम सदेश छे । तेनु पालन करवा माटे जागृत रहे शो । आ मारा अन्तिम सदेशनो पत्र जालवी राखशो अने योग्य अमल करशो ।"

श्रीउदयगिरि तलेटी
३१ मो उपवास, ता० २२-१-६८, सोमवार

मुनि जगजीवन

९

अन्तिम देहयात्रा

पूज्य श्री तपस्वीजी के निर्वाण पाने का समाचार वायु-वेग से पूर्वभारत में तथा देश के दूसरे भागों में भी व्यापक रूप से फैल गया। तार-टेलीफोन-विभाग एवं भारतीय आकाशवाणी के पटना और दिल्ली के केन्द्रों ने तपस्वीजी के निर्वाण-समाचार पूरे भारत में ही नहीं, भारत के वाहर के देशों में भी पहुँचा दिये थे। छोटे-वड़े गाँवों एवं शहरों से जनसमुदाय ठीक समय पर उदयगिरि पहुँचने के लिए उमड़ने लगा। कलकत्ता, झरिया, जी० टी० रोड तथा हाय-वे रोड मोटर-गाड़ियों की दौड़-धूप से भर गये। जगह-जगह से स्पेशल वसें राजगिर की ओर दौड़ने लगीं। ट्रेनों से भी भावुक भक्तों का अजस्र प्रवाह उमड़ने लगा। राष्ट्रीय धोरी मार्ग और राज्यों के अपने मार्गों से राजगिर की ओर आनेवाली वसें एवं ट्रेनें दर्शनार्थियों से खचाखच भरी नजर आने लगीं।

वम्बई एवं सौराष्ट्र से अग्निक्रिया के अवसर पर लोगों के पहुँच सकने की संभावना न थी, किंतु वनारस, कानपुर एवं आगरा से समूह-के-समूह लोग आ पहुँचे थे। पूज्य तपस्वीजी के देहत्याग से पूर्व ही राजगिर श्वेताम्वर जैन धर्म-शाला के रसोड़े का जीमणवार अच्छे ढंग से पूर्ण हो चुका था। भोजन-व्यवस्था में क्रमभंग होने का कोई कारण

न था। सब लोग यथावत निवृत्त ही हुए थे, कि तभी योगीराज के निर्वाण-समाचार की उद्घोषणा ने लोगों के हृदय में हलचल मचा दी। जो भी साधन जिसे मिला, वही लेकर सब-के-सब उदयगिरि की तलहटी में एकत्र हो गये। एक ओर धुन, भजन एवं कीर्तन लोग गाने लगे, तो दूसरी ओर पूज्य तपस्वीजी के आकाशभेदी जयनादों से समस्त दिशाएँ गूँज उठीं।

लगभग ११ बजे श्री जयति मुनिजी ने पूज्य तपस्वीजी की देह को 'वोसरा' कर श्री संघ को अर्पण कर दिया, सौंप दिया। साधुवेष में पूज्यश्री की देह-प्रतिमा को पद्मासन में विराजित देख लोगों के हृदय स्तब्ध रह गये। उनकी पवित्र भव्य मुद्रा के दर्शन करते हुए जनसमुदाय ने संलेखना महातप से हुई देह-शुद्धि एवं तप के प्रकाशमान परमाणुओं को उनके दिव्य मुखमण्डल पर सहज ही शोभित देखा।

कुटीर के बाहर भव्य शामियाने में उनकी पवित्र देह को विराजमान करने के लिए पालकी (विमानाकार) रखी गयी। श्री संघ ने 'जय-जय नंदा, जय-जय भद्दा' के गगनभेदी नारों के साथ द्रव्य देह को जब पालकी में विराजित किया, तब साक्षात् देवविमान जैसा दृश्य खड़ा हो गया था। तपस्वीजी की आभामयी देह एवं महासंकल्पमयी मुखमुद्रा भले-भलों के अहंकार को चकनाचूर (हतप्रभ) कर रही थी। सारा वातावरण शब्दशः अवर्णनीय दिव्यता से परिपूर्ण था।

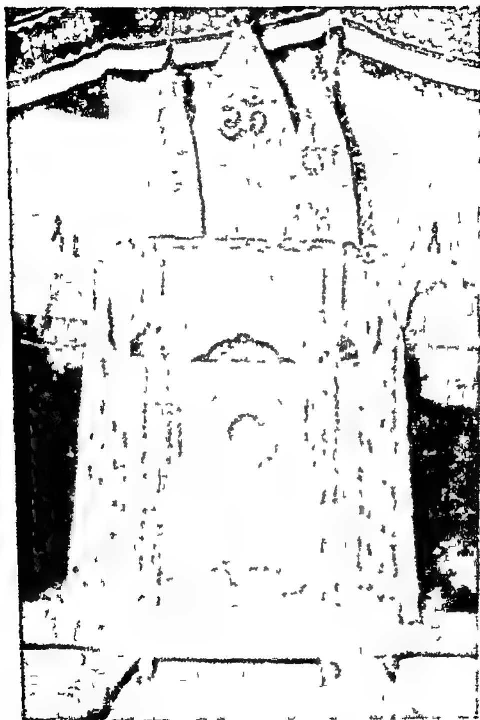
श्री जयति मुनिजी अश्रुधारा-मयी आँखों से कुटीर में विराजमान थे। वज्र-सा उनका हृदय जैसे आज फटकर द्रवित हो चला था। अपनी बंद ध्यानस्थ आँखों में वे तपस्वीजी की चमकती देहवाली तीन-तीन विमान-शिविकाओं को जैसे आकाशगामी होते हुए देख रहे थे— और, तभी एकाएक उनके मुख से ये शब्द निकल पड़े, "जाय छे, जाय छे

लाल-लाल आभामय दिव्य प्रभा जाय है!" उस समय कुटीर में मुनिश्री के सान्निध्य में महासती मंडल एवं श्रावक-श्राविकाओं की उपस्थिति में ही यह घटना घटी, जिसके वे सभी साक्षी रहे।

तपस्वीजी के पवित्र देह-विमान को आकाशभेदी जयनादों के साथ शामियाने से उठाकर भाताघर के सामने गोल चक्कर पर, विशेष प्रकार से शृंगारित एवं विविध सौंदर्य-प्रसाधनों से सज्जित विशिष्ट मांडवी में, एक ऊँचे गोल चक्कर पर बनाये गये खास मंच पर, रखा गया। धरती से ५ फीट ऊँची जगह पर रखा हुआ यह विमान अलौकिक सौंदर्य से शोभित था। हजारों की भीड़ इस पवित्र देह के दर्शन एवं स्पर्शन कर अपने-आपको कृत-कृत्य मान रही थी।

मांडवी के सामने ही एक नया शामियाना खड़ा किया गया था, जहाँ जनसमुदाय एकत्रित होकर धुन गाते हुए तपस्वीजी की पवित्र आत्मा को शांति प्रदान कर रहे थे। देह-विमान की अगल-बगल में बहुमूल्य सुगन्धित धूप-दीप के जलने एवं पवित्र पदार्थों की सुरभि से समस्त वातावरण नयी स्फूर्ति देनेवाला बन गया था। द्रव्य-देह को दर्शन के लिए २४ घंटे तक रखने का श्री संघ ने निर्णय किया था। अतः अखण्ड कीर्तन तथा धूप-दीप के कार्यक्रम रात्रि-भर चालू रहे।

प्रातः चार बजे से ही दूर-दूर के दर्शनार्थियों का आना प्रारंभ हो चुका था, और रात्रि की वह हल-चल प्रभात में विराट रूप धारण कर चुकी थी। श्री जयंति मुनिजी, अंतरंग सेवा में लगे हुए पं० रोशन लालजी, श्रीनिरंजन देवजी आदि के साथ-साथ सैकड़ों नर-नारियों एवं साधु-साध्वियों के चौविहार उपवास जारी थे। जनसमुदाय का प्रवाह सतत वर्धमान था, फलतः सात-आठ बजे वह पंडाल एक विशाल सभा के रूप में परिवर्त्तित हो गया।



आज की सभा में पूज्य तपस्वीजी के अन्तिम दर्शन के लिए पूज्य विनोबाजी के १०-२० बजे पधारने की उद्घोषणा हो चुकी थी। अत आठ बजते-बजते हजारों लोग पूर्ण अदब और खामोशी के साथ सभा-स्थल पर जमा हो गये थे। इस सभा में श्री जयति मुनिजी ने पूज्य तपस्वीजी के महातप को श्रद्धाजलि देते हुए हृदयद्रावक शब्द कहे, जिससे सबकी आँखें अश्रु से भीग उठीं। पूज्या महासतियो ने भी अपनी विछोह-व्यथा प्रगट की तथा तपस्वीजी का अनन्त उपकार मानकर कृत कृत्यता का अनुभव किया।

अतिम यात्रा की व्यवस्था बनाये रखने के लिए श्री सघ ने पहले से ही सभास्थल में सोने-चादी के फूल बरसाने का निर्णय ले लिया था और उसकी सारी व्यवस्था श्री बचुभाई को सौंपी गयी थी। परिणामत इस यात्रा-मार्ग में असाधारण भीड होने पर भी ठीक-ठीक शाति बनी रह सकी।

पूज्य विनोबाजी यथासमय पधारे थे। भारत के इस महान् दार्शनिक चितक और सत पुरुष विनोबा के पधारत ही सर्वत्र अपूर्व शाति छा गयी। वे सबसे पहले पूज्य तपस्वीजी के विमान के पास दर्शन-वन्दन के लिए पधारे तथा देर तक दर्शन एवं मूक श्रद्धावदन कर चुकने के बाद सभास्थल में आये।

श्री विनोबाजी, अपूर्व अवसर के अनुरूप ही, श्रीमद्‌राजचन्द्र की आदि-अन्त की कड़ियाँ गान हुए ध्यान में जैसे डूब गये। वैराग्य रम ■ इस भजन को गाते समय उनकी आँखों से, हजारो दर्शकों की साक्षी में ही, आँसू टपकने लगे। बहुत गंभीर भाव से उन्होंने इस महान् तपोनिधि सत को श्रद्धाजलि अर्पित की और अत्यन्त गद्-गद् हृदय से भावपूर्ण शब्दों में वे बोले, "तपस्वीजी संसार-रस के

अनुभवी थे। जिसको संसार का जितना ही तीव्र अनुभव रहता है, उसे उतनी ही तीव्रतर आसक्ति भी रहती है; परन्तु जब ज्ञानपूर्वक सत्य का साक्षात्कार होता है, तब सारी आसक्ति तीव्रतम विरक्ति के रूप में परिवर्त्तित हो जाती है। इस तरह यौगिक छटा से निर्भीकता पूर्वक देह-त्याग करना तीव्रतम विरक्ति का ही साक्षत् परिणाम है इन शब्दों में अपनी हार्दिक मंगलभावनाएँ एवं श्रद्धाभावना प्रकट कर विनोवाजी वहाँ से विदा हुए।

आज की इस महासभा में भक्त-समुदाय पूज्य तपस्वीजी की पालकी तथा उससे सम्बन्धित विशिष्ट मर्यादित वस्तुओं की उछामणी (वोली) का लाभ लेकर पालकी की हर कीमती वस्तु का अधिकाधिक मान करने के लिए उतावला था। श्री नगीन भाई कल्याणजी वेरावलवाले (बंबई) ने इस कार्य की जिम्मेदारी सँभाली थी। अतिशय उत्साह के साथ पालकी के छोटे-वड़े कलश, चादर तथा पालकी को सर्वप्रथम उठाने के लिए कंधा (स्कंध) देने की वोलियाँ वोलने का क्रम प्रारंभ हुआ। एक घंटे से भी अल्प समय में १ लाख ३३ हजार से अधिक रूपयों की वोलियाँ वोली गयीं। वोलियों का प्रवाह वहुत ही उत्साह-जनक था। ऐसा लगता था मानो समुद्र में ज्वार आ रहा हो।

पालकी-यात्रा-समारोह प्रारंभ होने के पूर्व से ही अ-जैन श्रद्धालु भक्तों की अपार भीड़ विपुल सम्मान एवं भक्ति के भाव से परिपूरित हो महाराजश्री की पालकी पर पुष्पों की वर्षा करने लगी थी। विहार के जिन नेताओं की ओर से पालकी पर खादी की मालाएँ अर्पित की गयीं, उनमें विहार के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री कृष्णवल्लभ सहाय, विहार विधान सभा के अध्यक्ष श्री धनिक लाल मंडल, विहार प्रदेश कांग्रेस कमिटी के अध्यक्ष °० राजेन्द्र मिश्र, विहार कांग्रेस विधायक

पालकी के निकट पूज्य तपस्वीजी के निश्नम्र भक्त (दाएँ से) श्री निरंजन देव जैन, पंडित रोशनलालजी एवं श्री कोठारीजी बैठे हुए।

निर्वाणोपरांत संत विनोबा भावे तपस्वीजी महाराज के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए। तख्त पर विराजमान श्री जयंति मुनिजी महाराज और नीचे बैठे हुए श्री 'तरुण' जी।

मंडल के नेता श्री महेश प्रसाद सिंह, भूतपूर्व लोकनिर्माण मंत्री श्री रामलखन सिंह यादव, मगध सांस्कृतिक संघ के मंत्री श्री सुरेन्द्र प्रसाद 'तरुण' तथा विहार प्रान्तीय दिगंबर तीर्थ क्षेत्र कमिटी के व्यवस्थापक श्री नेम कुमार जैन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

ठीक १२ बज कर २० मिनट होने पर "जय-जय नन्दा, जय-जय भद्रा" के आकाशभेदी निनादों के साथ पालकी, जो विमान जैसी ही भव्य आकारवाली थी, उठायी गयी। जिन भाइयो ने प्रथम उठाने के लिए अपना स्कंध देने की वोलियां बोली थीं, व सब समय पर उपस्थित हो गये थे। इधर उसी समय पंडाल मे अपार कोलाहल के साथ तपस्वीजी के ऊपर उछाले गये सोने-चांदी के फूलो को उपस्थित जनता ने बड़ी छीना-झपटी के साथ लूटा। अनन्य श्रद्धा के साथ फूलों की वर्षा को लोग झेलते रहे। हजारो रुपये वृष्टि-पात्र में भक्ति सहित अर्पित गये किये।

इधर पालकी के चारो ओर भारी भीड इकट्ठी हो गयी थी। पालकी तथा पूज्य तपस्वीजी के चरणों का स्पर्श करने के लिए तथा पालकी उठाने में अपना कंधा (स्कन्ध) देकर अपने-आपको पवित्र बनाने के लिए लोगों के एक बड़े समुदाय ने धमारा (धावा) किया। अपने ही द्वारा बनाये गये नियम-कानून तथा स्वीकृत मर्यादा को भक्ति-विभोर जन-समुदाय ने तोड डाला। किसी भी तरह से स्वयं-सेवकों की व्यवस्था अथवा पुलिस-दल की व्यवस्था टिक न सकी। सभी प्रकार की व्यवस्थाएँ स्थापित करने के प्रयत्न निष्फल हो गये। इस बार के इस प्रचंड धमारे (धावे) ने एक भारी हलचल मचा दी थी।

लगभग दस हजार से अधिक व्यक्ति अंतिम महायात्रा में तपोधनी के चरम दर्शन के लिए एकत्रित हो गये थे। मार्ग में पालकी के साथ

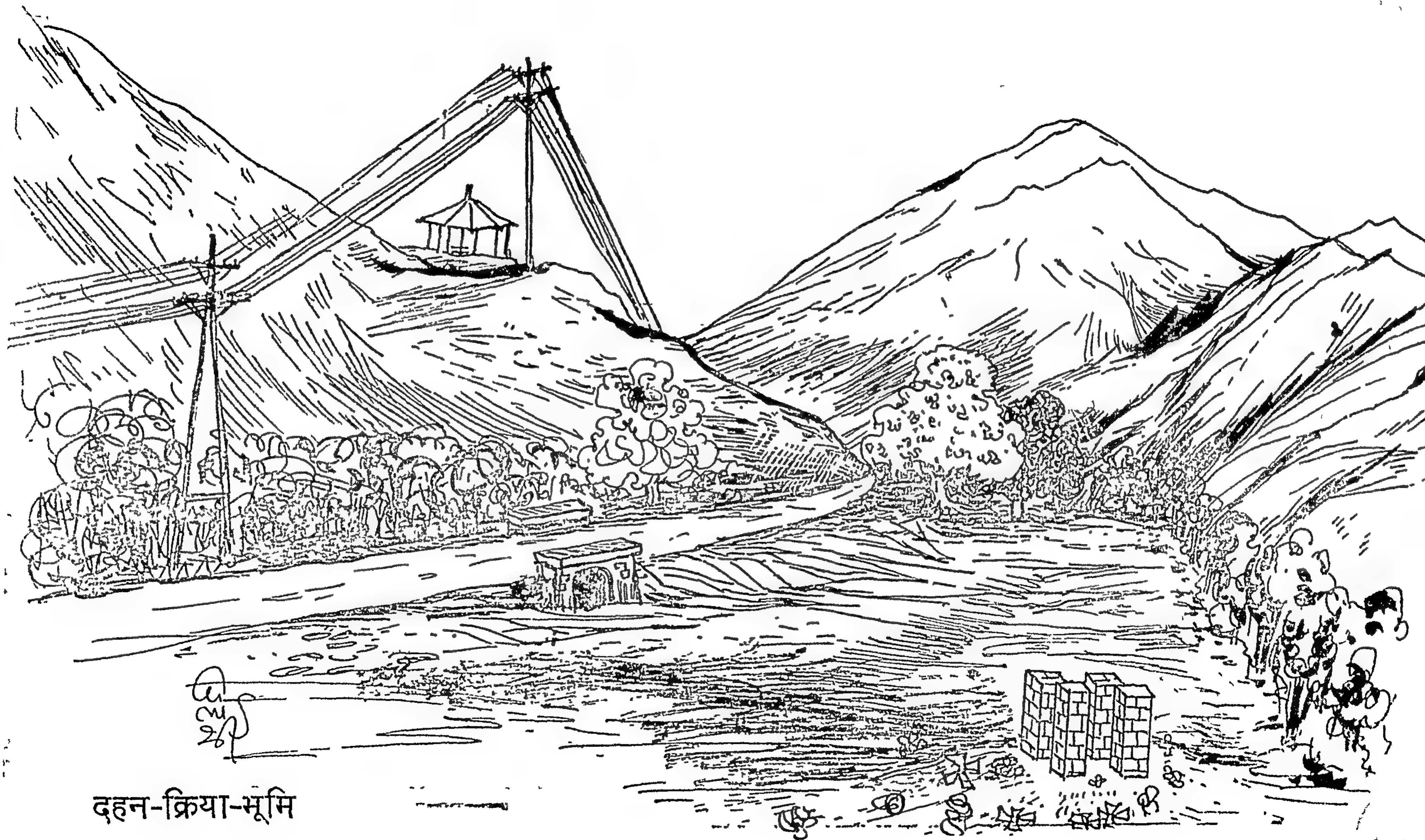
इतने बड़े समुदाय का व्यवस्थापूर्वक चलना दुष्कर-सा हो गया था। स्थिति इतनी नाजुक थी कि कोई सत्ता-व्यवस्था वहाँ किसी रूप में अपना स्थान नहीं बना सकती थी। पूज्य तपस्वीजी के एकमात्र तपःप्रभाव से ही विमान के आकारवाली भव्य पालकी धीमे-धीमे आगे बढ़ती जा रही थी।

जब महाराजश्री की महायात्रा निकली और विमान (पालकी) समाधि-स्थान (जहाँ अन्त्येष्टि क्रिया होनेवाली थी) की ओर जाने लगा, तब सुंदर सुशोभन प्रसाधनों से सज्जित एक सुंदर हाथी झूमता हुआ अपनी आकर्षक गति से आगे-आगे चल रहा था। उस पर रखे नगारों की आकाशभेदी ध्वनि गूँज रही थी। पीछे आकाश-स्पर्शी ओंकारांकित बड़े-बड़े ध्वज फहरा रहे थे। विशाल बैण्ड पार्टी के करुण स्वरों एवं पड़धम की बुलन्द आवाजों ने वातावरण में एक अकथनीय गंभीरता उत्पन्न कर दी थी। बैण्ड के पीछे-पीछे सभी साधन-सामग्री से सुसज्ज हो, वाद्ययंत्रों एवं मुक्त वातावरणसर्जक तंत्री-तालादि लेकर सौ-सौ भक्तों की विशाल टोलियोंवाली स्थानीय कीर्तन-मंडलियाँ बिना किसी के बुलाये स्वतः ही तपःप्रभाव की प्रेरणा से आयी थीं और कीर्तन-भजन में एकदम मस्त होकर नाचती, कूदती, गाती तथा नया आकर्षण उत्पन्न करती हुई साथ चल रही थीं। इस वातावरण ने तथा गगनभेदी जयनादों ने जनसमूह को उन्मुक्त एवं उन्मत्त-सा बना दिया था। अब तक अनेक प्रकार के प्रतिबन्धों से अवरोधित उत्साह, दबा हुआ भक्ति-भाव तथा यौवन-उमंग त्रिवेणी संगम के रूप में एकाकार हो चले थे।

उदयगिरि पर्वत की तहलटी से चलकर, मार्ग में प्रचण्ड जयनाद करता हुआ वह जुलुस विमान के साथ बहुत कठिनाई से दो-ढाई घंटे

अंतिम यात्रा (पालकी-समारोह) का भव्य दृश्य ।

दहन क्रिया का अलौकिक एवं वर्णनातीत दृश्य । तपस्वीजी की पंचतत्त्वनिर्मित काया पुनः उन्हीं तत्त्वों में विलीन हो रही है ।



दहन-क्रिया-भूमि

में समाधि-स्थान तक पहुँच सका, जब कि वास्तविक दूरी दो फर्लांग से भी कम ही थी।

हाइ-वे रोड (राष्ट्रीय धोरी मार्ग) के किनारे उदयगिरि पर्वत की पवित्र सीमा में ही, गया जिले के प्रारंभिक पूर्ववर्त्ती तथा पटना जिले के अंतिम प्रान्तवर्त्ती भाग में पवित्र वाण गंगा के पास, अग्नि-संस्कार के लिए पसंद किये गये एक विशाल मैदान में, पालकी रखने की विशेष रूप से व्यवस्था की गयी थी। विशाल अमर्यादित एवं अनियंत्रित भीड़ अव्यवस्थित हो मैदान में आगे बढ़ी। समाधि-स्थान के संरक्षण के लिए आसपास ही खड़ा किया गया घेरा पुलिस एवं स्वयंसेवक दल के भगीरथ प्रयत्न से भी न बच सका। सारी व्यवस्था टूट गयी, परंतु समाधि-स्थान को रंच मात्र भी हानि न पहुँच पायी और यही, बाद में, सभी के आश्चर्य एवं चर्चा का विषय बना।

जब तक तपोमूर्त्ति के द्रव्य-देह से युक्त विमान (पालकी) को समाधि-स्थान के ऊँचे स्तंभ (पीलर्स) पर अवस्थित किया गया, तब तक तपस्वी योगीराज का स्मित वदन पूर्ववत तपस्तेज से चमकता रहा। महातप की प्रचण्ड अग्नि से सुविशुद्ध बनी हुई वह जड़ देह जरा भी मुरझायी न थी। भीड़ में उस समय कोई शांत भाव से आँसू बहा रहा था, तो कोई सिसक सिसक कर रो रहा था। दूसरे लोग देख न लें, इस भावना से कोई आँसू पोंछ रहा था, तो कोई अपना स्पष्ट आक्रन्दन रोक ही नहीं पाया था। इस तरह की ममता एवं विषमता से भरी विविधता के बीच ही दसन-दमते १० मन चंदन के पवित्र काष्ठों से सारी देह-प्रतिमा आवृत हो चुकी थी।

तपस्वीजी के संसारी ज्येष्ठ पुत्र श्री अमृतलाल भाई ने श्री संघ की आज्ञा से लौकिक विधि के अनुसार दाह-क्रिया प्रारंभ की। देखते-देखते घृत से सींची हुई अग्नि की विशाल लपटें आकाश को छूने लगीं। जिस महापुरुष ने तप-रूपी अग्नि से पहले ही देह को भस्म कर डाला था, उसीकी तप्त देह के अवशिष्ट वाह्यांशों को भी इस द्रव्य-अग्नि ने भस्मसात् कर सदा के लिए अपनी गोद में समा लिया, मानो इससे महातपस्वीजी को अथवा उस महाग्नि को ही परम शांति या ठंडक मिली हो।

पूज्य तपस्वीजी की भस्मी शांत रूप से बुझ भी नहीं पायी थी, कि उसके पहले ही वंचित रह जाने की पवित्र आशंका-भावना से भक्तिशील भावुक भक्तों ने पवित्र भस्म के कण-कण को समेट लिया। समाधि-स्थान असाधारण शांति के साथ मौन रह गया, वातावरण में खामोशी और निस्तब्धता व्याप्त हो गयी।

× × ×

महाराजश्री के निर्वाणोपरान्त उसी दिन क्षेत्र की प्रायः सभी शिक्षण-संस्थाएँ बंद कर दी गयीं। मगध सांस्कृतिक संघ के साथ-साथ अन्य शैक्षणिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं व्यापारिक प्रतिष्ठानों की भी बैठकें बुलायी गयीं और पूज्य तपस्वीजी के प्रति श्रद्धांजलियाँ अर्पित करते हुए उनके त्यागमय जीवन-दर्शन पर सम्यक प्रकाश डाला गया।

इसी संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि विगत ३ मार्च को मगध शोध-संस्थान (नालन्दा) का वार्षिक सम्मेलन हुआ, जिसकी अध्यक्षता बौद्ध-जगत के सुप्रसिद्ध विद्वान मनीषी एवं भिक्षु श्री जगदीश

काश्यप ने की तथा उद्घाटन किया बिहार के तत्कालीन खाद्य, आपूर्त्ति एवं वाणिज्य मंत्री श्री सतीश प्रसाद सिंह ने। अधिवेशन में बिहार के सामुदायिक विकास, ग्राम-पंचायत एवं गृह रक्षावाहिनी विभाग के तत्कालीन मंत्री श्री रामनगीना सिंह, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के भूतपूर्व निदेशक डा० भुवनेश्वर नाथ 'माधव' आदि के अतिरिक्त भाषा-साहित्य के सैकड़ों विद्वान उपस्थित थे। उक्त अवसर पर मगध सांस्कृतिक संघ के प्रधान मंत्री श्री सुरेन्द्र प्रसाद 'तरुण' ने तपस्वी महाराजश्री के सम्मान में निम्नांकित प्रस्ताव उपस्थित किया, जिसका समर्थन किया बिहार के उदीयमान कवि तथा सिने-जगत के गीतकार श्री हरिश्चन्द्र प्रियदर्शी ने। सर्वसम्मति से जो प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, वह इस प्रकार है—

"मगध शोध-संस्थान के प्रथम अधिवेशन की यह सभा तप:पूत, स्थानकवासी, जैन-परंपरा के महान संत, श्री १००८ श्री जगजीवन मुनिजी महाराज के प्रति हार्दिक सम्मान व्यक्त करती है, जिन्होंने राजगृह के उदयगिरि की तलहटी में निर्वाण-अनुष्ठान कर मगध को गौरवान्वित किया।

"सभा इस अवसर पर तपस्या-भूमि और दाह-संस्कार-स्थल पर स्मारक-निर्माणार्थ भूमि प्रदान करने का आग्रह बिहार सरकार से करती है। साथ-ही साथ, यह सभा अनुष्ठान-स्मारक के निर्माण एवं प्रकाशन में निष्ठापूर्ण योगदान के लिए 'पूर्वभारत स्थानकवासी जैन संघ, कलकत्ता' के प्रति आभार प्रकट करती है।"

'निर्वाण' का समाचार पाते ही देश की विभिन्न संस्थाओं एवं महापुरुषों की ओर से श्रद्धांजलि के तार एवं पत्रों का तांता-सा लग

गया था। तार या पत्र भेजकर अपनी श्रद्धाभावना का परिचय देनेवालों में बिहार के महामहिम राज्यपाल श्री नित्यानन्द कानूनगो, मुख्यमंत्री श्री विन्ध्येश्वरी प्रसाद मंडल, बिहार विधान-सभा के अध्यक्ष श्री धनिक लाल मंडल तथा बिहार के मुख्य सचिव श्री श्रीधर वासुदेव सोहोनी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।*

•••

---

* उपर्युक्त सभी तार एवं पत्र श्री 'तरुण' जी के नाम से आये थे, जो पूर्वभारत स्थानकवासी जैन संघ को यथासमय समर्पित कर दिये गये।

१०
व्यवस्था

इस संलेखना महातप से सम्बन्धित पूर्वापर काल का यदि योग कर लिया जाए, तो इसकी अवधि को डेढ मास से भी अधिक सुदीर्घ कालव्यापी माना जा सकता है। प्रारम्भ से ही दर्शकों की संख्या कल्पनातीत रूप मे रही। हजारो की संख्या में लोग बराबर आते ही रहे। इस महातप-महोत्सव के शुभ अवसर पर व्यवस्था कैसी थी? सारा व्यवस्था-तन्त्र कैसे एव किनके द्वारा चलाया गया? दर्शकों तथा कार्यकर्त्ताओं को समय-समय पर पूज्य तपस्वीजी के तप प्रभाव के मूक चमत्कार किस प्रकार दृष्टिगोचर हुए? और, यह महा भगीरथ-कार्य कैसे एव किनके प्रभाव से सरलतम बन गया? यह सारा वृत्तान्त अवश्य ही जानने एव समझने योग्य है।

पूज्य तप पूत महामुनि के उपवास की प्रारम्भिक अवस्था म ही पड़े प्रत्याघात का अनुभव मात्र पूर्वभारत ने ही नहीं, अपितु सारे भारतवर्ष ने किया था। दो-चार दिनो मे ही कलकत्ते से हजारों की संख्या में सद्भावनाशील बन्धुओ के आगमन तथा उनके सतत बने रहने का क्रम जारी हो गया। राजगिर में श्वताम्बर जैन कोठी एव दिगम्बर जैन कोठी की खूब जमावट है। विशाल परिमाण मे यात्रियों को समा सकने की उनमें क्षमता है। राजगिर तीर्थ कमिटी ही

सारी जिम्मेदारियाँ सँभालती है। ये सभी धर्मशालाएँ उपवास के प्रारंभ में ही इस प्रकार भर गयी थीं कि नये दर्शनार्थियों को प्राइवेट मकानों एवं सनातन धर्मशाला की शरण लेनी पड़ी, किंतु उनसे भी आश्रय की समस्या पूर्णतः हल नहीं हुई। नये-नये यात्रियों का तांता सदा लगा ही रहा।

श्वेताम्बर जैन कोठी के मैनेजर श्री जयंतिलाल भाई एक सुश्रावक हैं तथा जिम्मेदार व्यक्ति के रूप में साधु-संतों की सेवा में तत्पर रहते हैं। जब सैकड़ों-हजारों यात्री प्रतिदिन दर्शनार्थ आने लगे, तो पूर्वभारत के अग्रगण्य श्रावक-समुदाय ने एकत्रित होकर भावी सुव्यवस्था के लिए सबसे पहले श्री जयंतिलाल भाई की ही सलाह ली।

व्यक्तिगत रूप से कलकत्ते के कितने ही अग्रगण्य भाइयों ने पूज्य तपस्वीजी के समक्ष, श्री जयंति मुनिजी के सान्निध्य में, परम भक्तिभाव प्रकट किया और कहा, "यद्यपि पूर्वभारत के सभी संघ तथा कलकत्ता श्री संघ संयुक्त रूप में सारा कार्य-भार वहन करेंगे ही, फिर भी यदि कोई कमी रह जाए या कोई विशेष आवश्यकता आ खड़ी हो तो एक से लेकर एक लाख रुपये तक खर्च करके भी हमें इस पवित्र प्रसंग को भव्य तथा उज्ज्वल बनाना है।

इस बीच राजगृह में एकत्रित सभी प्रदेशों के श्रावक बंधुओं ने 'पूर्वभारत स्थानकवासी जैन संघ' नाम से एक संगठन खड़ा किया एवं समस्त कार्य-भार को यथोचित परिमाण में संभाल लेने का निर्णय किया। श्वे० जैन कोठी के मैनेजर श्री जयंति भाई ने श्वे० जैन कोठी के मंत्री श्री तेज सिंहजी भांडिया भागलपुरवाले से डेप्युटेशन के रूप में मिल लेने की सलाह दी, जिससे कि इतने बड़े विशाल आयोजन का कार्य और भी सुगम बन जाए।



मगध शोध संस्थान के खुले अधिवेशन में तपस्वीजी के प्रति श्रद्धांजलि-प्रस्ताव उपस्थित करते हुए श्री सुरेन्द्र प्रसाद 'तरुण'। प्रस्तुत चित्र में बिहार के तत्कालीन खाद्य एवं आपूर्ति मंत्री श्री सतीश प्रसाद सिंह, सामुदायिक विकास एवं ग्रामपंचायत मंत्री श्री रामनगीना सिंह तथा भाषा साहित्य-क्षेत्र के अनेकानेक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् उपस्थित नजर आ रहे हैं।

स्थानकवासी समाज के सभ्यों को यह सलाह रुचिकर प्रतीत हुई। वे श्री जयति भाई को साथ लेकर भागलपुर गये और भाडिया साहब से मिलकर संतोष का अनुभव किया। भाडिया साहब ने भी बड़े गौरव एवं आनंद के साथ इस परम मांगलिक महातप के आयोजन में हर प्रकार के सहयोग देने का वचन दिया। श्री जयतिलाल भाई को उन्होंने यथोचित सभी प्रकार की सुविधाएँ देने का आश्वासन देकर उत्साहित किया।

कलकत्ता-निवासी श्री विमलकुमार सिंहजी मुकीम तथा श्रीमान् विनय सिंहजी नाहर ने भी श्री जयति भाई को इस सारे ही ऐतिहासिक महाप्रसंग में हर तरह की सुव्यवस्था बनाये रखने की सूचना भेजी। श्री नन्दलाल भाई तथा श्रीमान् मणिलाल भाई नेग्मोवाले ने मौखिक एवं पत्र द्वारा पूज्य तपस्वीजी के महातप के निमित्त आनेवाले दर्शनार्थियों की सुव्यवस्था में सावधानी बरतने का अनुरोध किया। फलत जयति भाई को इस कार्य में सबकी ओर से स्वाभाविक उत्साहवर्धक प्रेरणा मिलती रही और एतदर्थ ये सभी सद्गृहस्थ अभिनन्दनीय हैं।

दिगम्बर जैन कोठी के मैनेजर श्री नेम कुमार जैनजी और श्री विनोदकुमारजी आदि सक्रिय कार्यकर्त्ताओं ने तथा उनकी कमिटी के मंत्री श्री सुबोध कुमार जैनजी एवं प्रमुखश्री ने भी बारबार जो सुविधाएँ प्रदान कीं तथा तन-मन से इस ऐतिहासिक प्रसंग को भव्य बनाने में जो सहयोग दिया, उन सबका वर्णन शब्दों से नहीं किया जा सकता है। साथ ही, हम जैन श्वेताम्बर कोठी, राजगृह के भूतपूर्व मैनेजर स्वर्गीय श्री कन्हैयालालजी श्री श्रीमाल के प्रथम सुपुत्र श्री शांति

कुमार जैन की सेवाएँ तथा महाराजश्री के प्रति उनकी भक्ति-भावना का उल्लेख करना कदापि नहीं भूल सकते, जिन्होंने अनुष्ठान-अवधि में अपने सारे काम-धाम छोड़कर अनेक बार जमशेदपुर से आने का कष्ट उठाया और पालकी-समारोह में भी सराहनीय सहयोग दिया। फिर जयंतिलालजी जैन की धर्मपत्नी श्रीमती मंजुकुमारी जैन तथा अनुज श्री यशवंतलाल जैन, श्वेताम्बर धर्मशाला के मुनीम श्री सुरेन्द्र कुमार जैन की सेवाएँ भी सर्वथा प्रशंसनीय रहीं। हमें यह भी याद है कि दिगम्बर धर्मशाला व्यवस्था समिति के उपमंत्री श्री बद्री प्रसादजी सरावगी (पटना) भी बीच-बीच में आकर दिगम्बर समाज की ओर से पूरे सहयोग का निर्देश अपने व्यवस्थापकों को देते रहे। इस संदर्भ में तो हमारे अनुभव एवं हृदय ही साक्षी हैं. अतः प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध सभी सहयोगी बन्धुओं का हार्दिक आभार माने बिना हम नहीं रह सकते हैं।

हजारों व्यक्तियों के लिए प्रतिदिन दोनों वक्त के भोजन के सम्बन्ध में श्री जैन कोठी की भोजन-कमिटी के चेयरमैन श्री द्वारका दास भाई केशवजी ने उत्तम मार्गदर्शन दिया। रसोड़े के सम्बन्ध में आवश्यक नियमों की मर्यादा में सभी सहूलियतें प्रदान कर उन्होंने अपनी आदर्श कर्त्तव्यनिष्ठा का परिचय दिया, जो सचमुच ही प्रशंसनीय है।

पूर्वभारत स्थानकवासी जैन संघ ने दिनांक १-१-६८ से सारे कार्यों की संपूर्ण जिम्मेदारी अपने हाथ में ले ली। श्री संघ के नेतृत्व में, अपनी ही देख-रेख में, श्वेताम्बर कोठी के नियमों की मर्यादाओं का सम्पूर्ण निर्वाह करते हुए सतर्कतापूर्वक सतत ऐसा प्रयास जारी रखा गया, जिससे दर्शनार्थियों को भोजन के सम्बन्ध में किसी भी तरह का कष्ट न हो।

खाने-पीने की व्यवस्था सचमुच ही अंत तक प्रशंसनीय रही। भोजन के सम्बन्ध मे कभी किसीने जरा भी असंतोष व्यक्त नहीं किया। इतना ही नहीं, जब-तब तो व्यवस्था के सम्बन्ध में संतोषजनक प्रशंसाएँ ही कानों में पड़ती रहतीं। कभी कभी तो चार-चार हजार व्यक्तियों को खिलाने की व्यवस्था का जटिल प्रश्न खड़ा हो जाता, परन्तु कार्यकर्त्ताओं की सुज्ञता, कुशलता, सेवा की उत्कट भावना तथा इस परम ऐतिहासिक महातप के लिए सब कुछ कर गुजरने की तमन्ना ने सुव्यवस्था को बनाये रखने में परम सहायता पहुँचायी। भोजन कमिटी के वृद्ध सभ्यों ने 'वृद्धोऽपि तरुणायते' की उक्ति के अनुसार कभी किसी तरह की शिथिलता न आने दी। विशाल संख्या में सेवक-दल ने भी रात-दिन अपनी सारी सेवाएँ पूज्य तपस्वीजी के तपश्चरण और श्री संघ को सहर्ष अर्पित करके कृतकृत्यता का अनुभव किया।

जैसा कि पहले ही कह चुके हैं, श्वेताम्बर तथा दिगम्बर जैन धर्मशालाएँ तो उपवास के प्रारम्भ में ही भर चुकी थीं। सनातन धर्मशाला में भी जगह खाली न रह पायी। उपलब्ध निजी (प्राइवेट) मकानों पर भी कब्जा किया गया, परंतु इतने महाप्रयत्न के बाद भी आनेवाले दर्शकों की भीड़ का आना नहीं रुका। एक-एक कमरे में १०-११ व्यक्ति सो जाते। धर्मशाला के बरामदों में भी पैर रखने की जगह न रहती। मगर स्थान की यह संकीर्णता किसी के हृदय को परेशान अथवा बेचैन न बना सकी और सभी अविचलित भाव से अपनी भक्ति का परिचय देते रहे। शीघ्र ही उदयगिरि में विशेष प्रकार के तम्बुओं एवं विशाल पंडाल की व्यवस्था करनी पड़ी, जिससे आनेवाले सभी दर्शनार्थी सफर व ठंड में भी अपनी रक्षा कर सकें।

दिगम्बर जैन धर्मशाला तथा सनातन धर्मशाला के मैनेजरों ने भी वस्तुतः इतनी ही उच्च भावना से अपनी सेवाएँ अर्पित की थीं, जिसका परिणाम यह निकला कि धर्मशालाओं के कार्यालय भी दर्शनार्थियों के सोने के स्थान बन गये।

राजगृह धर्मशाला से उदयगिरि पर्वत की तलहटी लगभग चार मील दूर है। वहाँ तक उचित समय पर पहुँच सकने के लिए स्पेशल बसों की समुचित व्यवस्था की गयी थी, जो दिन-भर आने-जाने की सेवा में लगी रहतीं तथा हजारों यात्रियों को लातीं और ले जातीं—विशेषतः तपस्वीजी के चरणों में उदयगिरि तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध होतीं।

उदयगिरि की तलहटी में एक भव्य एवं विशाल प्रवचन-पंडाल भी खड़ा किया गया (यह विशाल पंडाल एवं उदयगिरि के तंबुओं को खड़ा करने की व्यवस्था का भार श्रीमान् विमल प्रसादजी जैन ने महाराजश्री के महातप से आकर्षित होकर स्वतः संभाल लिया था), जिसमें नियमित रूप से पूज्य साधु-साध्वियों के प्रवचन होते रहते। प्रातःकालीन एवं दोपहर के प्रवचनों में हजारों की संख्या में मानव-मेदिनी उपस्थित रहती। सुविशाल सभा में पूज्य तपस्वीजी की पवित्र तपोनिष्ठा को श्रद्धांजलि दी जाती। उनके महातप विपयक सूक्ष्मतम विवरणों से तथा उनके श्रीमुख से निकले हुए उच्चकोटि के आध्यात्मिक सुभापितों से उपस्थित जनता को सदा-सर्वदा अवगत रखा जाता। संलेखना महातप का स्वरूप, उसका प्रभाव तथा दुर्गमता का वर्णन सुनते-सुनते लोग आश्चर्यविभोर हो जाते और तपस्वीजी की अंतरात्मा से उद्भूत आध्यात्मिक सुभापितों का श्रवण सबको मंत्रमुग्ध बना देता।

अपने जीवनकाल में ही स्वस्थ, समृद्ध एव सक्षम देह की माया को एक ओर रखकर मृत्यु का आह्वान करना कोई ऐसी-वैसी छोटी बात या बच्चों का खेल न था। देह-चेतना के भेद की बातें करनेवाले और मीठा शब्दजाल फैलानेवाले बहुत-से लोग जगत् मे मिल जाएँगे, परन्तु अनुभूत सत्य के आधार पर काया की माया को पूज्यश्री की तरह उतार फेंकने या समेट लेनेवाले तथा आन्तरिक चेतना की गहराई में पनडुब्बे की तरह डुबकी लगानेवाले सच्चे वीर सतान तो विरले ही होते हैं। पूज्य तपस्वीजी ने जैन धर्म की पितृभूमि एव ऐतिहासिक-धार्मिक पवित्र राजगृह में उग्रतप एव महातप की आराधना करके सचमुच जैन सस्कृति पर ही नहीं, बल्कि समस्त भारतीय संस्कृति पर भी एक कलश—महाकलश चढा दिया।

आकर्षक पडाल में प्रवचन के सामूहिक प्रसग आने पर जब चारों ही तीर्थ बड़ी सख्या मे एकत्रित होते तब कलियुग में भी सतयुग के पाँचवें आरे में चौथे आरे के दृश्यों को देखने का हरएक को मौका मिलता। शास्त्रों मे वर्णित विवरणों के अनुसार राजगृह के उपवनों में जिस तरह परिषदा (जनसमूह) भगवान् महावीर के उपदेश-श्रवण एव दर्शन के लिए जाती, ठीक उसी तरह दो हजार वर्ष से भी अधिक समय के बाद फिर से राजगृह के पवित्र उदयगिरि के उद्यान में धर्म-श्रवण एव महातपस्वीजी के दर्शन के लिए परिषदा आने लगी। इस कथन में अतिशयोक्ति नहीं है। वह राजगृह बहुत अशों मे भगवान् की राजगृह का स्वरूप ले चुकी थी, ऐसा हरएक को प्रतीत होता। जिन स्थानों पर अतीत-कालीन अनेक सत-सतियों ने सथारे किये थ, उनके विस्मृत इतिहास को, शास्त्रों में वर्णित सभी विवरणों के अनुसार ही इस महातपस्वी ने पुनरुत्पादित किया था।

इस महातप के ४५ दिनों की अवधि में प्राय: तीन लाख मनुष्यों ने तपस्वीराज के दर्शन किये होंगे। श्री संघ के अपने भोजनालय में ही लगभग ५०-६० हजार की संख्या में लोगों ने भोजन किया होगा। सैकड़ों कुटुम्बों ने अपने स्वतन्त्र रसोड़े भी चला दिये थे। पूर्वभाग्त संघ की भोजन-समिति की मेहनत, भगीरथ प्रयत्न एवं रात-दिन की अनवरत सजगता ऐसी थी कि तरुणायी की उमंग भी उसके समक्ष फीकी पड़ जाती थी। यों सबको समान रूप से जो संतोष मिला, उसे सुव्यवस्था का ही सच्चा प्रमाणपत्र मानना चाहिए।

उदयगिरि की तलहटी में श्री श्वेताम्बर जैन कोठी के मैनेजर श्री जयंति भाई के भगीरथ प्रयास से बिजली, पानी के नल एवं टेलीफोन की व्यवस्था चन्द ही दिनों में की जा सकी थी। राजगिर से उदयगिरि तक स्पेशल फोन ले जाने में सरकार के लगभग पन्द्रह हजार रुपये खर्च हुए। ये सब सुविधाएँ बिहार सरकार प्रशंसनीय सदाशयता के साथ सत्वर कर देती थी।

श्री दिगम्बर कोठी के मैनेजर श्री नेम कुमारजी तथा श्री विनोद कुमारजी का भी इस संलेखना महातप में जो प्रेमपूर्ण सहयोग एवं बल मिला, वह सर्वत: उल्लेखनीय है, अत: पुनरुक्ति दोष से बचने की चिंता किये बिना हमने उसके पुनरुल्लेख को उचित माना है।

बिहार के उत्साही सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यकर्त्ता एवं राजगृह के ही निवासी श्री 'तरुण' जी का योगदान तो अपने ढंग का अनुपम एवं विशिष्ट ही रहा। इस सांस्कृतिक महातप से वे स्वत: आकर्षित हुए थे। उनका दृढ़संकल्प रहा कि यह महातप बिहार या पूर्वभारत तक ही मर्यादित न रहकर विश्वव्यापी बने और तदनुरूप ही उन्होंने

कार्य करके दिखाया भी। प्रान्तीय, अन्तर-प्रान्तीय तथा अन्तरराष्ट्रीय जगत मे इस महातप की व्यापकता के प्रसारित होने का सारा श्रेय श्री 'तरुण' जी को ही प्राप्त है। अत सदा ही वे हमारी स्मृतियो में विद्यमान रहेंगे।

इस पवित्र आध्यात्मिक महोत्सव में बिहार सरकार का बहुमूल्य एव त्वरित सहयोग तो सदैव रहा ही। विशेषत तत्कालीन मुख्यमत्री श्री बिन्ध्येश्वरी प्रसाद मंडल तथा राज्य-सरकार के विद्वान मुख्यसचिव श्री श्रीधर वासुदेव सोहोनी ने सभी अधिकारियो को महाराजश्री के पालकी-समारोह में सरकार की ओर से महत्त्वपूर्ण योग देने का निर्देश देकर महाराजश्री के प्रति अतुलनीय भक्तिभावना का परिचय दिया।

पूज्य तपस्वीजी के महातपका इतना व्यापक प्रभाव था कि सारी व्यवस्था सागोपाग सपूर्ण सफलता के साथ संपन्न हुई। पालकी को समाधि-स्थान की ओर ले जाते समय उतनी बड़ी भीड़ को कानू मे रखने एव शाति-व्यवस्था को बनाये रखने का श्रेय पुलिस-अधिकारी तथा उनके पुलिस-दल को है, जिन्होंने मानवीय दृष्टि से सेवा के आदर्श का दृष्टात प्रस्तुत किया। इस अवसर पर अत्यत नाजुक स्थितियों में भी किसी तरह की दुर्घटना नहीं घटी तथा अत तक योग-क्षेम निरापद बना रहा। सभवत महातप का ही यह दिव्य प्रभाव था।

इस महा-महोत्सव की डेढ़ मास की अवधि में उदयगिरि तथा आसपास के व्यापक क्षेत्रो में चार बार वर्षा हुई। सद्भाग्यवश वर्षा से कोई खिन्न नहीं आ खड़ा हुआ। न कोई बीमार पड़ा, न किसीका सिर तक ही दुखा। भयकर कड़कड़ाती ठड एवं वर्षा के विषम सयोगो में भी

एकान्त शांति एवं समाधि बनी रही। यह अचिन्त्य महिमा एक अदृश्य शक्ति की ही थी, कि जिसने अपना व्यापक एवं शांत प्रभाव सारे राजगृह और संपूर्ण विहार में फैलाया। इस वर्षा से तो किसानों को सोना बरसने जैसा लाभ एवं आनन्द प्राप्त हुआ। महादुष्काल के पंजे में पड़े हुए विहार में इसी बीच चार-चार बार व्यापक वर्षा का होना तपस्वी बाबा की ही उपस्थिति एवं साधना का महाफल था, यही विश्वास स्थानीय जनता के मन में पूरी दृढता के साथ जम गया।

• • •

परिशिष्ट

इस महातप की तेजोमयी सफलता का सपूर्ण श्रेय 'पूर्वभारत स्थानकवासी जैन सघ' की कार्य-कुशलता, निष्ठा एव तत्परता को है। पूर्वभारत स्थानकवासी जैन सघ के विशिष्ट सभ्यो का विस्तृत परिचय तो पूज्य महाराजश्री के निकट-भविष्य मे ही प्रस्तुत होनेवाले विशद-जीवन-चरित्र मे दिया जाएगा, किंतु यहाँ पर हम स्थल-सकोच एव कलेवर-वृद्धि के भय से सामार नाम-निर्देश मात्र कर रहे हैं।

श्री पूर्वभारत स्थानकवासी जैन संघ की कार्यवाहक समिति के पदाधिकारी एव सभ्यो की शुभ नामावली—

१	श्री केशवलाल जे० खडेरिआ	कलकत्ता	प्रमुख
२	,, कनक लाल जे० सघवी	झरिया	उपप्रमुख
३	,, शकर भाई उ० महेता	धनबाद	मानार्ह मत्री
४	,, दुर्लभजी भाई मडिया	तातानगर	,,
५	,, प्रफुल्ल आर० कोठारी	कलकत्ता	,,
६	,, प्रभुदास माणजी हेमाणी	,,	सभ्य
७	,, वाडीलाल कानजी	,,	,,

८.	श्री वनमाली दास जे० शाह	कलकत्ता	भोजन-व्यवस्था-समिति के सभ्य
९.	,, मगनलाल दोशी	,,	,,
१०.	,, चन्दु भाई एम० कोठारी	,,	,,
*११.	,, छोटालाल भाई कोठारी	—	,,
*१२.	,, रमणीकलाल दफ्तरी	—	,,
*१३.	,, जयंतिलाल शेठ	—	,,
१४.	,, रतिलाल रूपाणी	तातानगर	,,
१५.	,, रतिलाल डी० घेलाणी	कलकत्ता	खजांची
१६.	,, जयाचन्द भाई हेमाणी	,,	ट्रान्सपोर्ट
१७.	,, कांतिलाल गुलाबचन्द गांधी	तातानगर	,,
१८.	,, मगनलाल झवेरचन्द देसाई	कलकत्ता	सभ्य
१९.	,, रमणीकलाल दोशी	,,	,,
२०.	,, नगीनदास कामदार	झरिया	,,
२१.	,, कन्हैयालाल मोदी	,,	,,
२२.	,, देवचन्द अमुलख	कतरासगढ़	,,
२३.	,, उत्तमचन्द न० देसाई	तातानगर	,,
२४.	,, जगजीवन भाई पटेल	बनारस	प्रचार-सभ्य

सलाहकार-समिति के सभ्य

१.	श्री नरभेराम भाई हंसराज कमाणी	तातानगर
२.	,, शामलजी भीमजी घेलाणी	बम्बई
३.	,, मणिलाल राघवजी	बेरमो

* चिह्नित महानुभाव मात्र भोजन-व्यवस्था-समिति के सभ्य हैं।

●●●

महातप एवं उग्रतप की स्मरण-तिथियाँ

१६-११-६७	सोमवार मार्गशीर्ष कृष्णा तृतीया (कार्तिक)	धनबाद से प्रस्थान
१२-१२-६७	मंगलवार मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी	राजगृह-प्रवेश
१६-१२-६७	शनिवार मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा	उदयगिरि स्थान का चुनाव
२१-१२-६७	बृहस्पतिवार पौष कृष्णा चतुर्थी (मगसर)	उदयगिरि-प्रवेश
२२-१२-६७	शुक्रवार (संध्या) पौष कृष्णा षष्ठी (मगसर)	१५ उपवास का पचक्खाण, शनिवार से
२३-१२-६७	शनिवार पौष कृष्णा सप्तमी (मगसर)	प्रथम उपवास, उग्रतप आरम्भ
२७-१२-६७	बुधवार पौष कृष्णा एकादशी (मगसर)	कुटीर-प्रवेश
६-१-६८	शनिवार पौष शुक्ला सप्तमी	द्वितीय १५ उपवास का पचक्खाण

२०-१-६८	शनिवार माघ कृष्णा पंचमी (पौष)	संथारा पचक्खाण (यावज्जीवन)
२१-१-६४	रविवार माघ कृष्णा षष्ठी (पौष)	मासखमण पूर्णाहुति
४-२-६४	रविवार माघ शुक्ला षष्ठी	संथारा की अंतिम रात्रि (ग्रह-परिवर्त्तन)
५-२-६४	सोमवार (प्रातः १०-२०) माघ शुक्ला सप्तमी	महानिर्वाण
६-२-६४	मंगलवार माघ शुक्ला अष्टमी	अग्नि-संस्कार

श्रद्धांजलि

[ता० २८-१-६०, रविवार को पूज्य तपोधनी का ३० वाँ उपवास था। इसी दिन प्रातः को भी पूज्य महाराजश्री की शय्या के पास उनके चरणकमलों में बैठकर अतिशय विह्वल हो पंडित रोशनलालजी ने भक्ति-भावना से परिपूर्ण जो काव्यांजलि अर्पित की, वह यहाँ प्रस्तुत है।]

उदयाचल के तल में बैठा तपसी एक अनूठा।
छोड़ा मन-व्यामोह जानकर देह-धर्म को झूठा॥
तन, मन, वदन, इन्द्रियाँ, स्मृतियाँ हैं विभावमय खोटी।
सत्, चित्, मोद-स्वरूप, पून है आत्मधर्मता मोटी॥
स्वस्थ देह से कर विहार धनबाद शहर से आया।
राजगृह प्रभुधाम उदयगिरि-वन में मन ललचाया॥
धन्ना शालिभद्र-से सन्तों ने जहँ पाई समाधि।
प्रभुता पाने को छोड़ी थी आधि-व्याधि उपाधि॥
ऋषि-मुनि-वर अजित यह भूधर है पवित्रता मूर्ति।
साखी है इतिहास बोलते पत्थर पाकर स्फूर्ति॥
ढाई हजार वर्ष में यह पुण्य भी साधक गुणी।
क्या किया यह महातपस्वी और किये यह धुनी॥

मासखमण तप कर पांडव सम संथारे का मौका।
लख, सत्वर तप यज्ञ-वेदि पर देह धर्म को झोंका॥
सैंतीसवाँ उपवास आज, पर शांति-स्वस्थता अच्छी।
तपोनिष्ठ, पावन जीवन की सचमुच फलश्रुति सच्ची॥
मैं तो अधम, अपात्र परंतु प्रेमपूर्ण है हैया।
हे प्रभु! मेरे लिए आप हो तात, मात, गुरु, भैया॥
पिता-तुल्य रक्षण करते थे, ममता थी प्रभु! माँ सी।
गुरु-स्वरूप में नियमित देते हित-शिक्षाएँ खासी॥
भूले-भटके मुझ जैसे पथिकों को राह बताते।
भ्रातृप्रेम से स्निग्धहृदय हो स्नेह-सुधा बरसाते॥
जन्म-जन्म में कभी न भूलूँ ये उपकार अनोखे।
हृदय-भावना 'रोशन' है इस श्रद्धांजलि के मौके॥

उदयगिरि तलहटी
'संलेखना-साधना-कुटीर'
ता० २८-१-६८ रविवासर
३७ वाँ शुभ उपवास

विनयावनत
पं० रोशनलाल जैन
श्री जैन विद्यालय
वडिया (सौराष्ट्र)

